

देशबन्ध-सर्वबन्ध का थोकड़ा

(आठवें शतक का नववाँ उद्देशक)

श्री भगवती सूत्र के आठवें शतक के नवमें उद्देशक में- 'देशबन्ध-सर्वबन्ध' का थोकड़ा चलता है सो कहते हैं-

1. अहो भगवन् ! औदारिक शरीर कितने ठिकाणे (स्थान में) पाया जाता है ?
हे गौतम ! औदारिक शरीर 12 ठिकाणे पाया जाता है- 1. समुच्चय जीव, 2. समुच्चय एकेन्द्रिय, 3-7. पांच स्थावर (पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय), 8-10. तीन विकलेन्द्रिय (बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरैन्द्रिय), 11. तिर्यच पंचेन्द्रिय, 12. मनुष्य ।
2. अहो भगवन् ! औदारिक शरीर प्रायोग्य बन्ध किस कर्म के उदय से होता है ?
हे गौतम ! 1. वीर्यता, 2. सयोगता, 3. सद् द्रव्यता, 4. प्रमाद, 5. कर्म, 6. योग, 7. भव, 8. आयुष्य आदि हेतुओं से और औदारिक शरीर नाम कर्म के उदय से औदारिक शरीर प्रायोग्य बन्ध होता है ।
3. अहो भगवन् ! बारह बोलों के सर्वबन्ध की स्थिति कितनी है ?
हे गौतम ! एक समय की है ।
4. अहो भगवन् ! बारह बोलों के देशबन्ध की स्थिति कितनी है ?
हे गौतम ! समुच्चय जीव, तिर्यच पंचेन्द्रिय और मनुष्य इन तीन बोलों की स्थिति जघन्य 1 समय की, उत्कृष्ट तीन पल्योपम में एक समय ऊणी (कम) । समुच्चय एकेन्द्रिय और वायुकाय की स्थिति जघन्य एक समय की उत्कृष्ट अपनी अपनी स्थिति से एक-एक समय ऊणी । जो वैक्रिय लब्धि वाले वायुकायिक जीव है, उनका देशबन्ध का काल उत्कृष्ट स्थिति में अन्तर्मुहूर्त न्यून होता है, क्योंकि अन्तर्मुहूर्त का काल वैक्रिय लब्धि प्रयोग का कम हो जाता है । चार स्थावर और तीन विकलेन्द्रिय के देश बन्ध की स्थिति जघन्य एक क्षुल्लक भव में तीन तीन समय ऊणी, उत्कृष्ट अपनी अपनी स्थिति से एक-एक समय ऊणी (कम) ।

बोल	सर्वबन्ध जघन्य-उत्कृष्ट	देशबन्ध	
		जघन्य	उत्कृष्ट
समुच्चय जीव, तिर्यच पंचेन्द्रिय व मनुष्य (3)	1 समय	1 समय	3 पल्योपम में एक समय कम
समुच्चय एकेन्द्रिय व वायुकाय (2)	1 समय	1 समय	अपनी-अपनी स्थिति में एक समय कम
शेष चार स्थावर व तीन विकलेन्द्रिय (7)	1 समय	एक क्षुल्लक भव में 3 समय कम	अपनी-अपनी स्थिति में एक समय कम

ज्ञातव्य :- सामान्य नियम :-

- a. चारों गति में उत्पत्ति के प्रथम समय में तथा मनुष्य-तिर्यच में वैक्रियादि लब्धि प्रयोग के प्रथम समय में उस शरीर के योग्य पुद्गलों को केवल ग्रहण करना 'सर्वबन्ध' कहलाता है । तत्पश्चात् द्वितीय आदि समयों में शरीर योग्य पुद्गलों को ग्रहण करना तथा छोड़ना, दोनों कार्य होने से, उसे देशबन्ध कहते हैं ।
- b. सामान्यतः जब भी कोई बादर पर्याप्त वायुकायिक जीव, संख्यात वर्ष की आयु वाले सन्नी तिर्यच पंचेन्द्रिय तथा संख्यात वर्ष की आयु वाले सन्नी मनुष्य जब वैक्रियादि लब्धि का प्रयोग प्रारंभ करते हैं तब प्रथम समय में लब्धि वाले शरीर (वैक्रिय शरीर) का सर्वबन्ध होता है । दूसरे समय से लब्धि वाले शरीर का देशबन्ध प्रारंभ हो जाता है । जब तक लब्धि का प्रयोग रहता है तब तक के अन्तर्मुहूर्त काल में लब्धिवाले शरीर का देशबन्ध होता रहता है ।
- c. जब कोई जीव मरण को प्राप्त करता है, उस समय तक उसके प्रायः उस शरीर का देशबन्ध चलता रहता है । अगले ही समय में उसका देशबन्ध रुक जाता है । जब तक वह अगले भव में जाकर उत्पन्न

नहीं हो जाता तब तक उसके अर्थात् विग्रहगति (अपान्तरालगति) में रहे हुए जीवों में न तो सर्वबन्ध होता है और न ही देशबन्ध होता है।

जो मनुष्य, तिर्यच वैक्रिय लब्धि का प्रयोग करते हैं तब यदि प्रथम समय में मरण हो जाय तो वैक्रिय लब्धि का सर्वबन्ध भी रह सकता है। यदि वैक्रिय लब्धि के अन्य समयों में मरण होता है तो वैक्रिय शरीर का देशबन्ध ही रहता है।

- d. जब कोई तिर्यच वैक्रिय लब्धि का प्रयोग पूर्ण करके वापस औदारिक शरीर में आता है तब उसके प्रथम समय में औदारिक शरीर का देशबन्ध ही होता है, सर्वबन्ध नहीं होता।
- e. जब कोई मनुष्य वैक्रिय एवं आहारक लब्धि का प्रयोग पूर्ण करके वापस औदारिक शरीर में आता है तब उसके भी प्रथम समय में औदारिक शरीर का देशबन्ध ही होता है, सर्वबन्ध नहीं होता।
- f. जब कोई नारकी-देवता पर्याप्त अवस्था में उत्तरवैक्रिय करते हैं, तब भी वे अपने-अपने योग्य पर्याप्तियों को बनाना प्रारंभ करते हैं। पहले से वैक्रिय शरीर होने से तथा नवीन पुद्गल भी वैक्रिय रूप होने से उनमें आहार पर्याप्त के समय में सर्वबन्ध नहीं माना जाता है, किन्तु वैक्रिय शरीर का जो देशबन्ध पहले से चला आ रहा है, वही चलता रहता है। पूरे उत्तर वैक्रिय के काल में भी देशबन्ध ही होता है।
- g. जो जीव ऋजु गति से अगले भव में जाते हैं तो उनमें एक समय का भी अन्तर नहीं होता। अर्थात् वे जीव अगले समय में तो उत्पन्न होकर आहारादि के पुद्गल ग्रहण कर लेते हैं अतः सर्वबन्ध हो जाता है।

औदारिक शरीर-बंध में भी निम्नोक्त 8 कारण का उदय अपेक्षित हैं- 1. वीर्यता- वीर्यान्तरायकर्म के क्षयोपशम में उत्पन्न शक्ति, 2. सयोगता- उपयोग सहित योगयुक्तता, 3. सद्व्यता- जीव के तथारूप औदारिकशरीर योग्य तथाविध पुद्गलों (द्रव्यों) की विद्यमानता, 4. प्रमाद- शरीरोत्पत्तियोग्य विषय-कषायादि प्रमाद, 5. कर्म- औदारिक शरीर नामकर्म का उदय, 6. योग- कायादि की प्रवृत्ति, 7. भव- तिर्यच एवं मनुष्य गति के स्थान रूप भव और 8. आयुष्य- तिर्यच और मनुष्य का आयुष्य। इन 8 कारणों से उदय प्राप्त औदारिकशरीर प्रयोग नामकर्म से औदारिक शरीर पुद्गलों का प्रयोगबंध होता है।

सयोगता व योग में अंतर- पहला सयोग शब्द तद्योग्य शरीर पर्याप्ति की पूर्ति हेतु सहयोगी के रूप में तथा दूसरा योग शब्द पर्याप्ति पूर्ण होने के अनन्तर कायादि के माध्यम से जो औदारिक आदि योग्य वर्गणा का ग्रहण होता है, उससे समझना चाहिए।

औदारिक शरीर-प्रयोगबंध के दो रूप: सर्वबंध, देशबंध- जिस प्रकार घृतादि से भरी हुई एवं अग्नि से तपी हुई कड़ाही में जब मालपूआ डाला जाता है, तो प्रथम समय में वह घृतादि को केवल ग्रहण करता (खींचता) है, तत्पश्चात् शेष समयों में वह घृतादि को ग्रहण भी करता है और छोड़ता भी है, उसी प्रकार यह जीव जब पूर्वशरीर को छोड़ कर अन्य शरीर को धारण करता है, तब प्रथम समय में उत्पत्तिस्थान में रहे हुए उस शरीर के योग्य पुद्गलों को केवल ग्रहण करता है। इस प्रकार का यह बंध 'सर्वबंध' है। तत्पश्चात् द्वितीय आदि समयों में शरीरयोग्य पुद्गलों को ग्रहण भी करता है और छोड़ता भी है, अतः बंध देशबंध है। इसलिए यहाँ कहा गया है कि औदारिकशरीर प्रयोग बंध में सर्वबंध भी होता है और देशबंध भी। जो सर्वबंध होता है, वह केवल एक समय का होता है।

मालपूए के पूर्वोक्त दृष्टान्तानुसार जब वायुकायिक या मनुष्यादि जीव वैक्रिय शरीर करके उसे छोड़ देता है, तब छोड़ने के बाद औदारिक शरीर का देशबंध करता है। उसके पश्चात् दूसरे समय में यदि उसका मरण हो जाए तो इस अपेक्षा से औदारिक शरीर का देशबंध जघन्य एक समय का होता है।

उत्कृष्ट देशबन्ध- औदारिक शरीरधारी जीवों की उत्कृष्ट आयुष्यस्थिति तीन पल्योपम की है। इसमें से जीव प्रथम समय में सर्वबंधक और उसके बाद एक समय कम तीन पल्योपम तक देशबंधक रहता है। इस दृष्टि से समस्त जीवों की अपनी-अपनी उत्कृष्ट आयुष्य स्थिति के अनुसार एक समय तक वे सर्वबंधक और फिर शेष रही स्थिति में देशबंधक रहते हैं। जैसे- एकेन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति 22 हजार वर्ष की है। उसमें से 1 समय तक वे सर्वबंधक और फिर 1 समय कम 22 हजार वर्ष तक वे देशबंधक रहते हैं।

जिसकी जितनी उत्कृष्ट आयुष्यस्थिति होती है, उसका देशबंध उसमें एक समय कम होता है। जैसे-अपकाय की 7000 वर्ष, तेजस्काय की 3 अहोरात्र, वनस्पतिकाय की 10000 वर्ष, द्वीन्द्रिय की 12 वर्ष, त्रीन्द्रिय की 49 दिन, चतुरिन्द्रिय

की 6 मास की उत्कृष्ट आयु-स्थिति होती है।

क्षुल्लकभवग्रहण का आशय- सबसे छोटे भव (256 आवलिका प्रमाण) को क्षुल्लक भव कहते हैं। भगवती सूत्र शतक-24 (गमा), जीवाभिगम सूत्र की सातवीं अष्टविध प्रतिपत्ति, पाँचवें कर्मग्रन्थ की गाथा 40-41, अभिधान राजेन्द्र कोष आदि के आधार से यह स्पष्ट है कि क्षुल्लक भव (सबसे छोटा भव) औदारिक के दस ही दण्डकों में हो सकते हैं। इस श्लोक में भी समुच्चय एकेन्द्रिय, पाँच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, तिर्यच पंचेन्द्रिय और मनुष्य, इन ग्यारह बोलों का स्वकाय की अपेक्षा जघन्य अन्तर एक क्षुल्लक भव में तीन समय कम बतलाया है। इससे भी यह प्रमाणित हो जाता है कि औदारिक के दसों ही दण्डकों में 256 आवलिका प्रमाण क्षुल्लक भव हो सकते हैं।

एक मुहूर्त्त में 1,67,77,216 आवलिकाएँ होती हैं। सबसे छोटा भव (क्षुल्लक भव) 256 आवलिकाओं का होता है। अतः 1,67,77,216 में 256 का भाग देने पर एक मुहूर्त्त में होने वाले अधिकतम भवों की संख्या 65536 आ जाती है।

एक मुहूर्त्त (48 मिनट) में 65536 क्षुल्लक भव पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौरैन्द्रिय इन आठ दण्डकों में हो सकते हैं। इन आठ दण्डकों में एक श्वासोच्छ्वास काल में 17 से कुछ अधिक क्षुल्लक भव हो सकते हैं। तिर्यच पंचेन्द्रिय और मनुष्यों में तो चाहे जघन्य स्थिति के हों, चाहे उत्कृष्ट स्थिति के हों, लगातार आठ भव से अधिक हो ही नहीं सकते। प्रमाण-भगवती शतक-24 व उत्तराध्ययन सूत्र अ.10 गाथा-13.

पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय और वनस्पतिकाय इन चार स्थावरों तथा तीन विकलेन्द्रिय के देशबन्ध की जघन्य स्थिति एक क्षुल्लक भव में 3 समय कम की होती है। क्योंकि विग्रह गति के 2 समय तथा 1 समय उत्पत्ति के प्रथम समय के सर्वबन्ध का, इन तीन समयों को छोड़कर क्षुल्लक भव के शेष समयों में जघन्य देशबन्ध होता है क्योंकि वर्तमान भव की आयु का उदय पूर्वभव की आयु के पूर्ण होते ही प्रारंभ हो जाता है। अतः बाटे बहती अवस्था (विग्रहगति में) में वर्तमान भव की आयु का उदय ही माना जाता है। इसी कारण से विग्रह गति के समयों को देशबन्धादि की स्थिति में कम किया जाता है।

बादर पर्याप्त वायुकाय, तिर्यच पंचेन्द्रिय तथा संख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज मनुष्यों में औदारिक शरीर का देशबन्ध जघन्य एक समय भी हो सकता है। जब ये पर्याप्त अवस्था में वैक्रिय लब्धि का प्रयोग करते हैं, वैक्रिय लब्धि के प्रयोग के बाद में जब पुनः औदारिक शरीर में आते हैं तब इनमें प्रथम समय में औदारिक शरीर का देशबन्ध होता है। यदि उसी समय इनकी आयु पूर्ण हो जाये तो ये काल कर सकते हैं। इस अपेक्षा से इनमें देशबन्ध की जघन्य स्थिति एक समय की मानी जाती है।

वायुकाय, तिर्यच पंचेन्द्रिय और गर्भज मनुष्य में वैक्रिय लब्धि के प्रयोग के प्रथम समय अर्थात् सर्वबन्ध में भी जीव का मरण हो सकता है तथा वैक्रिय लब्धि के प्रयोग के द्वितीयादि समयों में अर्थात् देशबन्ध के किसी भी समयों में मरण हो सकता है।

5. अहो भगवन् ! समुच्चय जीव के सर्व बन्ध का अन्तर (आन्तरा) कितना है ?

हे गौतम ! जघन्य एक क्षुल्लक भव में तीन समय कम, उत्कृष्ट 33 सागर व करोड़ पूर्व से एक समय अधिक ।

6. अहो भगवन् ! समुच्चय जीव के देशबन्ध का अन्तर कितना है ?

हे गौतम ! जघन्य एक समय, उत्कृष्ट 33 सागर से तीन समय अधिक ।

औदारिक शरीरी समुच्चय जीव का अन्तर

बोल	जघन्य	उत्कृष्ट
सर्वबन्ध	1 क्षुल्लक भव में 3 समय कम	33 सागरोपम+करोड़ पूर्व+1 समय
देशबन्ध	1 समय	33 सागरोपम+3समय

7. अहो भगवन् ! ग्यारह बोलों का (समुच्चय एकेन्द्रिय, पाँच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, तिर्यच पंचेन्द्रिय और मनुष्य का) अन्तर कितना है ?

हे गौतम ! इन ग्यारह बोलों का अन्तर दो प्रकार का है- सकाय (स्वकाय) आसरी, परकाय आसरी। सकाय आसरी ग्यारह बोलों का सर्वबन्ध का अन्तर जघन्य एक क्षुल्लक भव में तीन समय कम, उत्कृष्ट अपनी अपनी स्थिति से एक समय अधिक। सकाय आसरी देशबन्ध का अन्तर 4 बोलों का (समुच्चय एकेन्द्रिय, वायुकाय, तिर्यच पंचेन्द्रिय और मनुष्य का) जघन्य एक समय का उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त का। बाकी 7 बोलों का सकाय आसरी देशबन्ध का अन्तर जघन्य एक समय का उत्कृष्ट तीन समय का।

परकाय आसरी 11 बोलों में से समुच्चय एकेन्द्रिय के सर्व बन्ध का अन्तर जघन्य दो क्षुल्लक भव में 3 समय कम, देश बन्ध का अन्तर जघन्य एक क्षुल्लक भव से एक समय अधिक, उत्कृष्ट 2000 सागरोपम व संख्यात वर्ष अधिक। वनस्पति काय के सर्व बन्ध का अन्तर जघन्य दो क्षुल्लक भव में 3 समय ऊणा (कम), देश बन्ध का अन्तर जघन्य एक क्षुल्लक भव से एक समय अधिक, उत्कृष्ट असंख्यात काल (पुढवी काल)। नव बोलों का (11 बोलों में से समुच्चय एकेन्द्रिय और वनस्पति को छोड़ कर बाकी 9 बोलों का) सर्व बन्ध का अन्तर जघन्य दो क्षुल्लक भव में तीन समय ऊणा (कम), उत्कृष्ट अनन्त काल (वनस्पति काल) का। देशबन्ध का अन्तर जघन्य एक क्षुल्लक भव से एक समय अधिक, उत्कृष्ट अनन्तकाल (वनस्पति काल) का।

औदारिक के 11 बोलों का सकाय आसरी अन्तर

बोल	सर्वबन्ध		देशबन्ध	
	जघन्य	उत्कृष्ट	जघन्य	उत्कृष्ट
समुच्चय एकेन्द्रिय, वायुकाय, तिर्यच पंचेन्द्रिय व मनुष्य (4)	एक क्षुल्लक भव में 3 समय कम	अपनी-अपनी स्थिति से एक समय अधिक	1 समय	अन्तर्मुहूर्त
शेष चार स्थावर व तीन विकलेन्द्रिय (7)	एक क्षुल्लक भव में 3 समय कम	अपनी-अपनी स्थिति से एक समय अधिक	1 समय	3 समय

औदारिक के 11 बोलों का परकाय आसरी अन्तर

बोल	सर्वबन्ध		देशबन्ध	
	जघन्य	उत्कृष्ट	जघन्य	उत्कृष्ट
समुच्चय एकेन्द्रिय (1)	दो क्षुल्लक भव में 3 समय कम	2000 सागरोपम व संख्यात वर्ष अधिक	एक क्षुल्लक भव से 1 समय अधिक	2000 सागरोपम व संख्यात वर्ष अधिक
वनस्पतिकाय (1)	दो क्षुल्लक भव में 3 समय कम	असंख्यातकाल (पुढवी काल)	एक क्षुल्लक भव से 1 समय अधिक	असंख्यात काल (पुढवी काल)
शेष चार स्थावर व तीन विकलेन्द्रिय, तिर्यच पंचेन्द्रिय व मनुष्य (9)	दो क्षुल्लक भव में 3 समय कम	अनन्त काल (वनस्पति काल)	एक क्षुल्लक भव से 1 समय अधिक	अनन्त काल (वनस्पति काल)

ज्ञातव्य -

औदारिक शरीर के सर्वबंध का अन्तरकाल- समुच्चय जीवों की अपेक्षा औदारिक शरीर बंध का सामान्य अन्तर- सर्वबंध का अन्तर- तीन समय कम क्षुल्लकभव ग्रहण पर्यन्त बताया है, उसका आशय यह है कि कोई जीव दो समय की विग्रहगति से औदारिक शरीरधारी जीवों में उत्पन्न हुआ तो वह विग्रहगति के दो समय में अनाहारक रहता है और तीसरे समय में सर्वबंधक होता है। यदि क्षुल्लकभव तक जीवित रह कर मृत्यु को प्राप्त हो गया और ऋजुगति से औदारिक शरीरधारी जीवों में उत्पन्न हुआ तो वहाँ पहले समय में वह सर्वबंधक होता है। इस प्रकार सर्वबंध का सर्वबंध के साथ जघन्य अन्तर तीन समय कम क्षुल्लक भव ग्रहण होता है।

उत्कृष्ट अन्तर समयाधिक पूर्वकोटि और तेतीस सागरोपम का बताया है। उसका आशय यह है कि कोई जीव मनुष्य आदि गति में अविग्रहगति से आकर उत्पन्न हुआ। वहाँ प्रथम समय में वह सर्वबंधक रहा। तत्पश्चात् पूर्वकोटि तक जीवित रहकर मृत्यु को प्राप्त हुआ, वहाँ से वह 33 सागरोपम की स्थिति वाला नैरयिक हुआ, अथवा अनुत्तरविमानवासी देव हुआ। वहाँ वह वैक्रिय पुद्गलों को ग्रहण करता है। वहाँ से च्यव (मर) कर वह दो समय की विग्रहगति द्वारा आकर औदारिक शरीर का सर्वबंधक रहा। विग्रहगति में जो वह दो समय तक अनाहारक रहा था, उनमें से एक समय पूर्वकोटि के सर्वबंधक के स्थान में डाल दिया जाए तो वह पूर्वकोटि पूर्ण हो जाती है, तथा एक समय अधिक बचा हुआ रहता है। इस प्रकार औदारिक सर्वबंध का परस्पर उत्कृष्ट अन्तर एक समयाधिक पूर्वकोटि और तेतीस सागरोपम होता है।

औदारिकशरीर के देशबंध का अन्तर- जघन्य एक समय है, क्योंकि देशबंधक मर कर अविग्रह से प्रथम समय में सर्वबंधक होकर पुनः द्वितीयादि समयों में देशबंधक हो जाता है। इस प्रकार देशबंधक का देशबंधक के साथ अन्तर जघन्यतः एक समय का होता है। उत्कृष्टतः अन्तर तीन समय अधिक 33 सागरोपम का है। क्योंकि देशबंधक मर कर 33 सागरोपम की स्थिति के नैरयिकों या देवों में उत्पन्न हो गया। वहाँ से च्यवकर दो समय की विग्रहगति से औदारिक शरीरधारी जीवों में उत्पन्न हुआ। इस प्रकार विग्रहगति में दो समय तक अनाहारक रहा, तीसरे समय में सर्वबंधक हुआ और फिर देशबंधक हो गया। इस प्रकार देशबंधक का उत्कृष्ट अन्तर 3 समय अधिक 33 सागरोपम का घटित होता है।

स्वकाय आसरी अन्तर- उसी-उसी गति-जाति-कायादि की अपेक्षा जो देशबन्ध-सर्वबन्ध का होता है उसे स्वकाय आसरी अन्तर कहते हैं। जैसे पृथ्वीकाय का जीव पुनः पृथ्वीकाय में जितने काल बाद उत्पन्न होकर सर्वबन्ध-देशबन्ध करे वह उसका स्वकाय आसरी अन्तर कहलाता है।

स्वकाय में भी वैक्रिय लब्धि-आहारक लब्धि यदि प्राप्त हो तो उनका प्रयोग कर जितने समय बाद पुनः अपनी गति, जाति, कायादि में देशबन्ध करे, वह भी स्वकाय आसरी अन्तर माना जाता है।

सकाय आसरी सर्वबन्ध के 11 बोलों का अन्तर औदारिक शरीर के सर्वबंध के समान जघन्य अन्तर, उत्कृष्ट अन्तर अपनी-अपनी स्थिति से एक समय अधिक होगा। क्योंकि उत्पत्ति के समय सर्वबन्धक रहा, उसके बाद पूरे जीवन भर, देशबन्धक रहा, उसके बाद दो समय की विग्रह गति से स्वकाय में उत्पन्न हुआ। प्रथम समय में पुनः सर्वबन्धक हो गया। विग्रह गति के दो समयों को मिलाने पर अपनी स्थिति से एक समय अधिक का अन्तर घटित होता है।

4 बोलों (समुच्चय एकेन्द्रिय, वायुकाय, तिर्यच पंचेन्द्रिय और मनुष्य) का देशबन्ध का अन्तर जघन्य 1 समय औदारिक शरीर के देशबन्ध के अन्तर के समान समझना चाहिए। उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त का बतलाया है क्योंकि इनमें वैक्रिय लब्धि हो सकती है और लब्धि प्रयोग के काल में वे वैक्रिय शरीर का प्रथम समय में सर्वबन्ध तथा द्वितीयादि समयों में देशबन्ध करते हैं, उसके बाद पुनः औदारिक शरीर में आने पर उनके औदारिक का देशबन्ध प्रारंभ हो जाता है।

शेष 7 बोलों का (चार स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय) देशबन्ध का जघन्य अन्तर तो 4 बोलों के समान ही होता है किन्तु उत्कृष्ट अन्तर दो समय की विग्रह गति की अपेक्षा से 2 समय अनाहारक के व 1 समय सर्वबन्ध का इस प्रकार से तीन समय का समझना चाहिए।

परकाय आसरी अन्तर- अपनी-अपनी गति, जाति, कायादि को छोड़कर दूसरी गति, जाति, कायादि में जाकर पुनः अपनी गति, जाति, कायादि में आकर जितने समय बाद सर्वबन्ध-देशबन्ध करे, वह परकाय आसरी अन्तर कहलाता है। एकेन्द्रिय जीवों का परकाय आसरी सर्वबन्ध का जघन्य व उत्कृष्ट अन्तर- कोई एकेन्द्रिय जीव दो समय की विग्रहगति से उत्पन्न हुआ, तो वह विग्रहगति में दो समय तक अनाहारक रहा और तीसरे समय में सर्वबंधक हुआ। फिर तीन समय कम क्षुल्लकभव-प्रमाण आयुष्य पूर्ण करके एकेन्द्रिय के सिवाय द्वीन्द्रियादि जाति में उत्पन्न हो जाय। वहाँ भी क्षुल्लकभव की स्थिति पूर्ण करके अविग्रहगति द्वारा पुनः एकेन्द्रिय जाति में उत्पन्न हो तो प्रथम समय में वह सर्वबंधक रहता है। इस प्रकार परकाय आसरी सर्वबंध का जघन्य अन्तर तीन समय कम दो क्षुल्लकभव होता है। कोई पृथ्वीकायिक जीव अविग्रहगति द्वारा उत्पन्न हो तो प्रथम समय में वह सर्वबंधक होता है। वहाँ 22,000 वर्ष की उत्कृष्ट स्थिति पूर्ण करके मर कर त्रसकायिक जीवों में उत्पन्न हो और वहाँ भी संख्यातवर्षाधिक दो हजार सागरोपम की उत्कृष्ट काय स्थिति पूर्ण करके पुनः एकेन्द्रिय जीवों में उत्पन्न हो तो वहाँ प्रथम समय में वह सर्वबंधक होता है। इस प्रकार सर्वबंध का उत्कृष्ट अन्तर संख्यातवर्षाधिक दो हजार सागरोपम होता है।

वनस्पतिकाय का सर्वबन्ध का जघन्य अन्तर समुच्चय एकेन्द्रिय के समान समझना चाहिए। वनस्पतिकाय के देशबन्ध का जघन्य अन्तर एक क्षुल्लक भव व एक समय अधिक का होता है। वनस्पतिकाय के सर्वबन्ध देशबन्ध का उत्कृष्ट अन्तर पुढवीकाल का होता है। (असंख्य लोकों में रहे हुए आकाश प्रदेशों को गिनने में जितना समय लगे, उतने असंख्यात अवसर्पिणी उत्सर्पिणी के समय प्रमाण) शेष 9 बोलों का सर्वबन्ध देशबन्ध का जघन्य अन्तर वनस्पतिकाय के समान समझना चाहिए। उत्कृष्ट अन्तर काल की अपेक्षा अनन्तकाल-अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी-प्रमाणकाल होता है। अर्थात्- अनन्तकाल के समयों में उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल के समयों का अपहार किया जाए तो अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल होता है। क्षेत्र की अपेक्षा अनन्तलोक है। इसका तात्पर्य है-अनन्त काल के समयों में अनन्त लोकाकाश के प्रदेशों को अपहार किया जाए, तो अनन्तलोक होते हैं। वनस्पतिकाय की कायस्थिति अनन्तकाल की है, इस अपेक्षा से वनस्पतिकाय, समुच्चय एकेन्द्रिय को छोड़कर शेष 9 बोलों का सर्वबन्ध का उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है। यह अनन्तकाल असंख्य पुद्गलपरावर्तन प्रमाण है।

असंख्य पुद्गल परावर्तन भी एक आवलिका के असंख्यातवें भाग के समयों के बराबर जानना चाहिए। अर्थात् एक आवलिका में असंख्यात समय होते हैं। उसके असंख्यातवें भाग में भी असंख्यात समय होते हैं। आवलिका के असंख्यातवें भाग में जितने असंख्यात समय होते हैं, उतने असंख्यात पुद्गल परावर्तन रूप अनन्तकाल समझना चाहिए।

औदारिक शरीर का अन्तर

बोल	जघन्य	उत्कृष्ट
सकाय आसरी सर्वबन्ध (11 भेद)	क्षुल्लक भव में 3 समय कम	अपनी-अपनी स्थिति+ 1 समय
सकाय आसरी देशबन्ध 4 भेद ↓ (समुच्चय एके., वायु, ति., प. व मनुष्य)	1 समय	अन्तर्मुहूर्त
शेष 7 भेद	1 समय	3 समय

परकाय आसरी		
समुच्चय एके. सर्वबन्ध	2 क्षुल्लक भव में 3 समय कम	2000 सागरोपम व संख्यात वर्ष अधिक
देशबन्ध	1 क्षुल्लक भव व 1 समय अधिक	
वनस्पति-सर्वबन्ध	2 क्षुल्लक भव में 3 समय कम	पुढवीकाल
देशबन्ध	1 क्षुल्लक भव व 1 समय अधिक	
शेष 9 बोलों का सर्वबन्ध	2 क्षुल्लक भव में 3 समय कम	वनस्पतिकाल (अनन्तकाल)
देशबन्ध	1 क्षुल्लक भव व 1 समय अधिक	

8. अल्प बहुत्व- सब से थोड़े औदारिक शरीर के सर्व बन्धक, उससे अबन्धक विशेषाधिक, उससे देश बन्धक असंख्यात गुणा।

ज्ञातव्य -

सबसे थोड़े सर्वबंधक जीव इसलिए हैं कि वे उत्पत्ति के प्रथम समय में ही पाए जाते हैं। उनसे अबंधक जीव विशेषाधिक हैं, क्योंकि वैक्रिय व आहारक के बंधक, विग्रहगति में और सिद्धगति में जीव न तो सर्वबंधक होते हैं, न देशबंधक होते हैं, अपितु अबंधक होते हैं। उनसे देशबंधक इसलिए असंख्यातगुणे हैं कि देशबंध औदारिक शरीर का काल असंख्यातगुणा है।

वैक्रिय शरीर की अपेक्षा -

9. अहो भगवान् ! वैक्रिय शरीर कितने ठिकाणे (स्थान में) पाया जाता है ?
हे गौतम ! छह ठिकाणे पाया जाता है- 1. समुच्चय जीव, 2 नारकी, 3 देव, 4. वायुकाय, 5. तिर्यच पंचेन्द्रिय, 6. मनुष्य।
10. अहो भगवन् ! वैक्रिय शरीर कितने बोलों से उदय होता है ?
हे गौतम ! 9 बोलों से बन्धता है- आठ बोल तो औदारिक शरीर में कहे सो कह देना और नववाँ बोल वैक्रिय लब्धि कहना।
11. अहो भगवन् ! वैक्रिय शरीर के सर्वबन्ध की स्थिति कितनी है ?
हे गौतम ! समुच्चय जीव में जघन्य एक समय की, उत्कृष्ट दो समय की। बाकी 5 बोलों (नारकी, देव, वायुकाय, तिर्यच पंचेन्द्रिय, मनुष्य) के सर्व बन्ध की स्थिति एक समय की होती है।
12. अहो भगवन् ! वैक्रिय शरीर के देशबन्ध की स्थिति कितनी है ?
हे गौतम ! समुच्चय जीव में जघन्य एक समय की, उत्कृष्ट 33 सागर में एक समय कम। वायुकाय, तिर्यच पंचेन्द्रिय मनुष्य के देशबन्ध की स्थिति जघन्य एक समय की, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की। नारकी, देव के वैक्रिय शरीर के देशबन्ध की स्थिति जघन्य 10000 वर्ष में 3 समय कम, उत्कृष्ट 33 सागर में एक समय कम।

वैक्रिय के 6 बोलों के सर्वबन्ध-देशबन्ध की स्थिति

बोल	सर्वबंध		देशबंध	
	जघन्य	उत्कृष्ट	जघन्य	उत्कृष्ट
समुच्चय जीव (1)	1 समय	2 समय	1 समय	33 सागरोपम में 1 समय कम
वायुकाय, तिर्यच पंचेन्द्रिय व मनुष्य (3)	1 समय	1 समय	1 समय	अन्तर्मुहूर्त
नारकी व देव (2)	1 समय	1 समय	दस हजार वर्ष में 3 समय कम	33 सागरोपम में 1 समय कम

ज्ञातव्य -

वैक्रिय शरीर प्राप्ति के नौ कारण- औदारिक शरीर उदय में वीर्यता, सयोगता आदि आठ कारण तो पहले बतला दिये गए हैं, वे ही 8 कारण वैक्रिय शरीर के हैं, नौवां कारण है-वैक्रिय शरीर नाम कर्मोदय में निमित्त वैक्रिय लब्धि। यह लब्धि वायुकाय, पंचेन्द्रिय तिर्यच और मनुष्यों की अपेक्षा से बताई गई है। अर्थात् इन तीनों के वैक्रिय शरीर प्रयोगबंध नौ कारणों से होता है, जबकि देवों और नारकों के आठ कारणों से ही वैक्रियशरीर प्रयोग प्राप्त होता है, क्योंकि उनका वैक्रिय शरीर भवप्रत्ययिक होता है।

वैक्रिय शरीर प्रयोग बंध भी दो प्रकार से होता है-देशबंध और सर्वबंध। वैक्रिय शरीर जीवों में उत्पन्न होता हुआ या लब्धि से वैक्रिय शरीर बनाता हुआ कोई जीव प्रथम एक समय तक सर्वबंधक रहता है। इसलिए सर्वबंध जघन्य एक समय तक रहता है। किन्तु कोई औदारिक शरीर वाला जीव वैक्रिय शरीर धारण करते समय सर्वबंधक होकर फिर मर कर देव या नारक हो तो प्रथम समय में वह सर्वबंध करता है, इस दृष्टि से वैक्रिय शरीर के सर्वबंध का उत्कृष्ट काल दो समय का है। औदारिक शरीर कोई जीव वैक्रियशरीर करते हुए प्रथम समय में सर्वबंधक होकर द्वितीय समय में देशबंधक होता

है और तुरंत ही मरण को प्राप्त हो जाए तो देशबन्ध जघन्य एक समय का और उत्कृष्ट एक समय कम 33 सागरोपम का है, क्योंकि अविग्रह गति से देवों और नारकों में उत्कृष्ट स्थिति में उत्पन्न हुआ जीव प्रथम समय में सर्वबन्धक होकर शेष समयों (33 सागरोपम में एक समय कम तक) में वह वैक्रिय शरीर का देशबन्धक ही रहता है।

देव-नारकों में भवधारणीय वैक्रिय शरीर होता है। उनमें उत्तर वैक्रिय नहीं करने पर तथा उत्तर-वैक्रिय करने पर दोनों ही अवस्थाओं में वैक्रिय शरीर का देशबन्ध ही चलता रहता है क्योंकि पहले भी वैक्रिय शरीर के योग्य पुद्गलों का ग्रहण करते हैं और उत्तर वैक्रिय में भी वैक्रिय शरीर के पुद्गलों का ही ग्रहण करते रहते हैं, इस कारण से उत्तर वैक्रिय करने पर भी वैक्रिय शरीर का सर्वबन्ध नहीं मानकर देशबन्ध ही माना जाता है।

वायुकाय, तिर्यचपंचेन्द्रिय और मनुष्य के वैक्रिय शरीर के देशबन्ध की स्थिति जघन्य एक समय की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की होती है। नैरयिकों और देवों के वैक्रिय शरीर के देशबन्ध की स्थिति जघन्य तीन समय कम 10 हजार वर्ष की और उत्कृष्ट एक समय कम तेतीस सागरोपम की होती है। मनुष्य-तिर्यच में वैक्रिय शरीर के देशबन्ध की अन्तर्मुहूर्त की स्थिति एक बार की वैक्रिय लब्धि के प्रयोग की अपेक्षा समझनी चाहिए। जीवनभर में तो अन्तर्मुहूर्त से अधिक होने से बाधा नहीं है।

13. अहो भगवन् ! वैक्रिय शरीर के सर्वबन्ध और देशबन्ध का अन्तर कितना है ?

हे गौतम ! समुच्चय जीव (सर्वबन्ध-देशबन्ध) में जघन्य एक समय का, उत्कृष्ट अनंत काल (वनस्पति काल) का। वायुकाय का स्वकाय (अपनी काय यानी वायुकाय) आसरी सर्वबन्ध-देशबन्ध का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट असंख्यात काल (पल्योपम के असंख्यातवें भाग) का। परकाय (अन्य काय यानी वायुकाय के सिवाय दूसरी काय) आसरी (सर्वबन्ध-देशबन्ध) जघन्य अन्तर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट अनंतकाल (वनस्पति काल) का। तिर्यच पंचेन्द्रिय और मनुष्य का सकाय आसरी सर्व बन्ध और देशबन्ध का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट प्रत्येक करोड़ पूर्व का, परकाय आसरी जघन्य अन्तर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट अनंतकाल (वनस्पति काल) का। नारकी, देव का सकाय आसरी अंतर नहीं, परकाय आसरी नारकी से लगा कर आठवें देवलोक तक सर्वबन्ध का अन्तर जघन्य अपनी अपनी स्थिति से अन्तर्मुहूर्त अधिक, उत्कृष्ट अनंतकाल (वनस्पति काल) का। देशबन्ध का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट अनंतकाल (वनस्पति काल) का। नवमें देवलोक से लगा कर नवग्रैवेयक तक सर्वबन्ध का अन्तर जघन्य अपनी अपनी स्थिति से प्रत्येक वर्ष अधिक, उत्कृष्ट अनंतकाल (वनस्पतिकाल) का। देश बन्ध का अन्तर जघन्य प्रत्येक वर्ष का, उत्कृष्ट अनंतकाल (वनस्पति काल) का। चार अनुत्तर विमान का सर्व बन्ध का अन्तर जघन्य अपनी अपनी स्थिति से प्रत्येक वर्ष अधिक, उत्कृष्ट संख्याता सागरोपम का। देशबन्ध का अन्तर जघन्य प्रत्येक वर्ष का, उत्कृष्ट संख्याता सागरोपम का। सर्वार्थसिद्ध का सर्व बन्ध और देश बन्ध का अन्तर नहीं।

वैक्रिय के समुच्चय जीव का तथा शेष 5 बोलों का सकाय आसरी अन्तर

बोल	सर्वबन्ध		देशबन्ध	
	जघन्य	उत्कृष्ट	जघन्य	उत्कृष्ट
समुच्चय जीव (1)	1 समय	अनन्त काल (वनस्पति काल)	1 समय	अनन्त काल (वनस्पति काल)
वायुकाय (1)	अन्तर्मुहूर्त	असंख्यात काल (पल्योपम के असंख्यातवें भाग)	अन्तर्मुहूर्त	असंख्यात काल (पल्योपम के असंख्यातवें भाग)
तिर्यच पंचेन्द्रिय व मनुष्य (2)	अन्तर्मुहूर्त	प्रत्येक करोड़ पूर्व	अन्तर्मुहूर्त	प्रत्येक करोड़ पूर्व
नारकी व देव (2)	-	-	-	-

वैक्रिय के 5 बोलों (समुच्चय जीव छोड़ के) का परकाय आसरी अन्तर

बोल	सर्वबंध		देशबंध	
	जघन्य	उत्कृष्ट	जघन्य	उत्कृष्ट
वायुकाय (1)	अन्तर्मुहूर्त	अनन्त काल (वनस्पति काल)	अन्तर्मुहूर्त	अनन्तकाल (वनस्पति काल)
तिर्यच पंचेन्द्रिय व मनुष्य (2)	अन्तर्मुहूर्त	अनन्त काल (वनस्पति काल)	अन्तर्मुहूर्त	अनन्तकाल (वनस्पति काल)
नारकी (1)	अपनी-अपनी स्थिति से अन्तर्मुहूर्त अधिक	अनन्त काल (वनस्पति काल)	अन्तर्मुहूर्त	अनन्त काल (वनस्पति काल)
देव (1) भवनपति से आठवें देवलोक तक	अपनी-अपनी स्थिति से अन्तर्मुहूर्त अधिक	अनन्त काल (वनस्पति काल)	अन्तर्मुहूर्त	अनन्त काल (वनस्पति काल)
नवमें देवलोक से नव ग्रैवेयक तक	अपनी-अपनी स्थिति से प्रत्येक वर्ष अधिक	अनन्त काल (वनस्पति काल)	प्रत्येक वर्ष	अनन्त काल (वनस्पति काल)
चार अनुत्तर विमान	अपनी-अपनी स्थिति से प्रत्येक वर्ष अधिक	संख्याता सागरोपम	प्रत्येक वर्ष	संख्याता सागरोपम
सर्वार्थ सिद्ध विमान	-	-	-	-

ज्ञातव्य -

वायुकाय की अपेक्षा अन्तर- औदारिक शरीरी वायुकायिक कोई जीव वैक्रिय शरीर का प्रारंभ करे तथा प्रथम समय में सर्वबंधक होकर मृत्यु प्राप्त करें, उसके पश्चात् वायुकायिकों में उत्पन्न हो, उसे अपर्याप्त अवस्था में वैक्रिय शक्ति उत्पन्न नहीं होती। पर्याप्त अवस्था में ही उत्पन्न होती है। इसलिए वह अन्तर्मुहूर्त में पर्याप्त होकर वैक्रिय शरीर करता है, तब वैक्रिय शरीर का पुनः सर्वबंधक होता है। इसलिए सर्वबंध का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त होता है। औदारिक शरीरी कोई वायुकायिक जीव वैक्रिय शरीर करे, तो उसके प्रथम समय में वह सर्वबंधक होता है। इसके बाद देशबंधक होकर मरण को प्राप्त करे तथा औदारिक शरीरी वायुकायिक में पल्योपम का असंख्यातवां भाग काल के अन्दर-अन्दर वैक्रियशरीर बना सकता है। उस समय प्रथम समय में सर्वबंधक होता है, इसलिए सर्वबंधक का उत्कृष्ट अन्तर पल्योपम का असंख्यातवां भाग होता है।

वायुकाय सन्नी तिर्यच पंचेन्द्रिय एवं संख्यातवर्ष की आयु वाले गर्भज मनुष्यों में वैक्रिय शरीर के सर्वबन्ध व देशबन्ध का स्वकाय आसरी तथा परकाय आसरी जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त बतलाया है, इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इन तीनों में अन्तर्मुहूर्त की स्थिति होने पर तथा पर्याप्त होने पर वैक्रिय लब्धि का प्रयोग हो सकता है।

जब कोई जीव वायुकाय में जाता है तो वहाँ वैक्रिय द्विक (वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अंगोपांग) की उद्वेलना (उस प्रकृति के दलिकों को अपनी अन्य सजातीय प्रकृति में संक्रमित करना तथा अपनी सत्ता समाप्त कर देना।) प्रारंभ हो जाती है। पल्योपम के असंख्यातवें भाग काल में वैक्रिय द्विक की उद्वेलना पूर्ण हो जाती है। उसके पश्चात् उस जीव में वैक्रिय लब्धि नहीं रहती है। अतः वायुकाय में रहते वैक्रिय लब्धि का प्रयोग पल्योपम के असंख्यातवें भाग काल में ही हो सकता है, उसके पश्चात् नहीं। इसी कारण से वायुकाय का स्वकाय आसरी वैक्रिय शरीर के सर्वबन्ध-देशबन्ध का उत्कृष्ट अन्तर पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग बतलाया है।

जिन जीवों ने अभी तक पंचेन्द्रिय पर्याय प्राप्त नहीं की अथवा जिन्हें पंचेन्द्रिय पर्याय को छोड़े पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग काल बीत चुका, ऐसे वायुकायिक जीव वैक्रिय नहीं कर सकते हैं।

वैक्रिय शरीर के सर्वबन्ध का जघन्य अन्तर- कोई सन्नी तिर्यच पंचेन्द्रिय पर्याप्त अवस्था में वैक्रिय लब्धि का प्रयोग कर प्रथम समय में वैक्रिय शरीर का सर्वबन्धक बना। अन्तर्मुहूर्त तक वैक्रिय शरीर का देशबन्धक रहा। उसके पश्चात् औदारिक शरीर में आकर अन्तर्मुहूर्त तक औदारिक शरीर का देशबन्धक रहा। अन्तर्मुहूर्त बाद पुनः वैक्रिय लब्धि का प्रयोग कर लेने पर प्रथम समय में वैक्रिय शरीर का सर्वबन्ध करता है। द्वितीयादि समयों में देशबन्ध करता है। इस प्रकार से वैक्रिय शरीर के सर्वबन्ध तथा देशबन्ध का जघन्य अन्तर काल अन्तर्मुहूर्त का होता है।

वैक्रिय शरीर के सर्वबन्ध देशबन्ध का तिर्यच पंचेन्द्रिय व मनुष्य में सकाय आसरी उत्कृष्ट अन्तर - पूर्व कोटि वर्ष की आयु वाला सन्नी तिर्यच पंचेन्द्रिय अथवा सन्नी मनुष्य वैक्रिय लब्धि के प्रयोग के प्रथम समय में सर्वबन्धक होता है। दूसरे समय से लेकर अन्तर्मुहूर्त काल तक वैक्रिय शरीर का देशबन्धक रहा। उसके बाद औदारिक शरीर में आ गया। वैक्रिय लब्धि का प्रयोग किये बिना ही पूरा भव व्यतीत कर दिया। इसी प्रकार अगले 7 भवों में पूर्वकोटि वर्ष की आयु वाला सन्नी तिर्यच अथवा सन्नी मनुष्य बना। आठवें भव के अन्त में वैक्रिय लब्धि का प्रयोग करें तो वैक्रिय शरीर के सर्वबन्ध-देशबन्ध का उत्कृष्ट अन्तर सन्नी तिर्यच व सन्नी मनुष्य की अपेक्षा पृथक्त्व पूर्वकोटि वर्ष का होता है। यही अन्तर नारकी व देवों का परकाय आसरी घटित हो जाता है।

तिर्यच पंचेन्द्रिय व मनुष्य की अपेक्षा अन्तर - नारकी तथा 8वें देवलोक तक के देवों का देशबन्ध का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त का जो बतलाया वह सन्नी तिर्यच पंचेन्द्रिय की अपेक्षा से समझना चाहिए। सन्नी मनुष्य की अपेक्षा से विचार करें तो जघन्य अन्तर पहली नारकी व दूसरे देवलोक तक के देवों का पृथक्त्व मास का तथा शेष छह नारकी तथा तीसरा देवलोक व उससे ऊपर के देवलोकों का देशबन्ध का जघन्य अन्तर पृथक्त्व वर्ष का होता है।

रत्नप्रभा पृथ्वी का दस हजार वर्ष की स्थितिवाला नैरथिक उत्पत्ति के प्रथम समय में सर्वबंधक होता है। वहाँ से काल करके सत्री तिर्यच पंचेन्द्रिय में अन्तर्मुहूर्त में पर्याप्त बनकर कर पुनः रत्नप्रभा पृथ्वी में उत्पन्न होता है, तब प्रथम समय में सर्वबंधक होता है। इसीलिए इसके सर्वबंधक का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त अधिक 10 हजार वर्ष होता है।

9वां देवलोक आनतकल्प का अठारह सागरोपम की स्थिति वाला कोई देव उत्पत्ति के प्रथम समय में सर्वबंधक होता है। वहाँ से च्यव कर वर्षपृथक्त्व (दो वर्ष से नौ वर्ष तक) आयुष्यपर्यंत मनुष्य में रह कर पुनः उसी आनतकल्प में देव होकर प्रथम समय में सर्वबंधक होता है। इसलिए सर्वबंध का जघन्य अन्तर वर्षपृथक्त्व अधिक 18 सागरोपम का होता है।

चार अनुत्तर वैमानिक देवों में सर्वबंध और देशबंध का उत्कृष्ट अन्तर संख्यात सागरोपम है। अनुत्तर विमानों में जाने वाले आराधक ही होते हैं। वे भविष्य में अधिकतम 13 भव करते हैं। चार अनुत्तर विमान के तो दो भव से अधिक होते ही नहीं हैं। इन दोनों भवों के बीच में अधिकतम संख्यात सागरोपम का ही अन्तर हो पाता है। सर्वार्थसिद्ध विमान में जीव एक बार ही जाता है, दुबारा वहाँ जाता ही नहीं है, इसलिए उसका अन्तर नहीं होता है।

नारकी व देवता में उत्पत्ति के प्रथम समय में वैक्रिय शरीर का सर्वबन्ध होता है तथा शेष समयों में (जितनी-जितनी आयु है) वैक्रिय शरीर का देशबन्ध ही चलता रहता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि नारकी देवता यदि उत्तर वैक्रिय करें तो भी उनमें वैक्रिय शरीर का देशबन्ध ही चलता रहता है, सर्वबन्ध नहीं होता।

साथ ही यह भी स्पष्ट होता है कि नारकी-देवता जब उत्तरवैक्रिय करके विविध प्रकार के रूप बनाते हैं तब अर्थात् उत्तर वैक्रिय के समयों में तथा वैक्रिय समुदघात के समयों में वैक्रिय मिश्र काययोग होता है, जो शरीर पर्याप्ति के पूर्ण होने तक रहता है। शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त जीव के वैक्रिय काययोग होता है। पहले से वैक्रिय शरीर होने से तथा नवीन पुद्गल भी वैक्रिय रूप ही ग्रहण करने से उनमें वैक्रिय शरीर का सर्वबन्ध नहीं मानकर देशबन्ध ही माना जाता है।

देवता व नारकी में उत्तर वैक्रिय करते समय वायुकाय, तिर्यच पंचेन्द्रिय व मनुष्य के समान पुनः आहार पर्याप्ति से लेकर मनःपर्याप्ति तक सभी पर्याप्तियाँ पूर्ण करनी होती हैं। पर्याप्तियों के पूर्ण होने के काल में भी देवों तथा नारकों में वैक्रिय शरीर का देशबन्ध ही होता है। क्योंकि वे उत्तर वैक्रिय के समयों में भी विशेष प्रकार के वैक्रिय पुद्गलों को ही ग्रहण करते हैं।

14. अल्पबहुत्व- सबसे थोड़े वैक्रिय शरीर के सर्व बन्धक, उससे देश बन्धक असंख्यात गुणा, उससे अबंधक अनन्त गुणा।

ज्ञातव्य -

वैक्रिय शरीर प्रयोग के सर्वबंधक जीव सबसे अल्प हैं, क्योंकि उनका काल अल्प है। उनसे देशबंधक असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि सर्वबंधकों की अपेक्षा देशबंधकों के जीव भी असंख्यात होते हैं तथा उनका काल असंख्यातगुणा है। उनसे भी वैक्रिय शरीर के अबंधक जीव अनन्तगुणे इसलिए हैं कि अन्य जीवों के साथ अनन्त सिद्ध जीव और अनन्त वनस्पतिकायिक जीव, वैक्रिय शरीर के अबंधक हैं। वे वैक्रिय शरीर के बन्धकों से अनन्तगुणे हैं।

15. अहो भगवन् ! आहारक शरीर कितने ठिकाणे (स्थान में) पाया जाता है ?
हे गौतम ! दो ठिकाणे पाया जाता है- समुच्चय जीव और मनुष्य में।
16. अहो भगवन् ! आहारक शरीर का कितने बोलों से उदय होता है ?
हे गौतम ! 9 बोलों से उदय होता है- आठ तो औदारिक के समान कह देना, नववां बोल आहारक लब्धि कहना।
17. अहो भगवन् ! आहारक शरीर के सर्वबन्ध और देशबन्ध की स्थिति कितनी है ?
हे गौतम ! सर्व बंध की स्थिति जघन्य उत्कृष्ट एक समय की, देशबन्ध की जघन्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की।

ज्ञातव्य -

आहारक शरीर प्रयोग बन्ध के अधिकारी केवल मनुष्य ही हैं। उनमें भी ऋद्धि (लब्धि)-प्राप्त, चतुर्दश पूर्वधर-प्रमत्त-संयत, सम्यग्दृष्टि, पर्याप्त, संख्यातवर्ष की आयु वाले, कर्मभूमि में उत्पन्न, गर्भज मनुष्य ही होते हैं। आहारक शरीर का सर्वबंध एक समय का ही होता है और देशबंध जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त मात्र ही है, क्योंकि इसके पश्चात् आहारक शरीर रहता ही नहीं है। उस अन्तर्मुहूर्त के प्रथम समय में सर्वबंध होता है, तदनन्तर देशबंध। आहारक शरीर के देशबन्ध की जघन्य तथा उत्कृष्ट दोनों ही स्थिति अन्तर्मुहूर्त की बतलायी गई है, इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि आहारक लब्धि के प्रयोग काल में जीव का मरण नहीं होता है।

18. अहो भगवन् ! आहारक शरीर के सर्वबन्ध और देशबन्ध का अन्तर कितना है ?
हे गौतम ! आहारक शरीर के सर्वबन्ध और देशबन्ध का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट देश ऊणा (कुछ कम) अर्द्ध पुद्गल परावर्तन काल का।

आहारक के 2 बोलों के सर्वबन्ध-देशबन्ध की स्थिति व अन्तर

बोल	सर्वबंध		देशबंध	
	जघन्य	उत्कृष्ट	जघन्य	उत्कृष्ट
समुच्चय जीव व मनुष्य (2) स्थिति	1 समय	1 समय	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त
समुच्चय जीव व मनुष्य (2) अन्तर	अन्तर्मुहूर्त	अर्द्ध पुद्गल परावर्तन काल	अन्तर्मुहूर्त	अर्द्ध पुद्गल परावर्तन काल

ज्ञातव्य -

आहारक शरीर को प्राप्त हुआ जीव, प्रथम समय में सर्वबंधक होता है, तदनन्तर अन्तर्मुहूर्त तक आहारक शरीर रहकर पुनः अपने मूल औदारिक शरीर को प्राप्त हो जाता है। वहाँ अन्तर्मुहूर्त रहने के बाद पुनः संशयादि-निवारण के लिए उसे आहारक शरीर बनाने का कारण उत्पन्न होने पर पुनः आहारक शरीर बनाता है, और उसके प्रथम समय में वह सर्वबंधक ही होता है। इस प्रकार सर्वबंध का अन्तर अन्तर्मुहूर्त का होता है यहाँ इन दोनों अन्तर्मुहूर्त को एक अन्तर्मुहूर्त की विवक्षा करके एक अन्तर्मुहूर्त बताया गया है, तथा उत्कृष्ट अन्तरकाल की अपेक्षा अनन्तकाल का अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल का है और क्षेत्र की अपेक्षा अनन्तलोक- अर्द्धपुद्गल परावर्तन का होता है। देशबंध के अन्तर के विषय में भी इसी प्रकार समझ लेना चाहिए।

आहारक शरीर के सर्वबन्ध-देशबन्ध दोनों का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त बतलाया है, इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि अन्तर्मुहूर्त के बाद पुनः आहारक लब्धि का प्रयोग उसी भव में दुबारा किया जा सकता है। आहारक शरीर एक भव में 2 बार व सम्पूर्ण संसार काल में 4 बार से अधिक प्राप्त नहीं होता है।

19. अल्प बहुत्व- सबसे थोड़े आहारक शरीर के सर्वबन्धक, उससे देश बन्धक संख्यात गुणा, उससे अबन्धक अनंत गुणा।

ज्ञातव्य -

आहारक शरीर के सर्वबंधक इसलिए सबसे कम बताए हैं कि उनका समय अल्प ही होता है। उनसे देशबंधक संख्यातगुणे इसलिए बताए हैं कि देशबंध का काल बहुत है। वे संख्यातगुणे ही होते हैं, असंख्यातगुणे नहीं, क्योंकि आहारक शरीर बनाने वाले गर्भज मनुष्य (साधु) उत्कृष्ट पृथक्त्व हजार ही होते हैं। इस कारण आहारक शरीर के देशबंधक भी असंख्यातगुणे नहीं हो सकते। उनसे अबंधक अनन्तगुणे इसलिए बताए हैं कि आहारक शरीर केवल मनुष्यों के, उनमें भी किन्हीं संयत जीवों के और उनके भी कदाचित् ही होता है, सर्वदा नहीं। शेष काल में वे जीव (स्वयं) तथा सिद्ध जीव तथा वनस्पतिकायिक आदि शेष सभी मनुष्येतर जीव आहारक शरीर के अबंधक होते हैं और वे उनसे अनन्तगुणे हैं।

20. अहो भगवन् ! तैजस् कार्मण शरीर कितने ठिकाणे पाया जाता है ?

हे गौतम ! चौबीस ही दण्डक के जीवों में पाया जाता है।

21. अहो भगवन् ! तैजस् कार्मण शरीर कितने बोलों से उदय होता है ?

हे गौतम ! सवीर्यता, सयोगता, सदद्रव्यता यावत् आयुष्य इन आठ बोलों से तैजस् कार्मण शरीर प्रयोग नाम कर्म के उदय से तैजस् कार्मण शरीर का उदय होता है।

22. अहो भगवन् ! तैजस् कार्मण शरीर (प्रयोग बंध) क्या देश बन्ध है या सर्व बन्ध है ?

हे गौतम ! देशबन्ध है, सर्वबन्ध नहीं।

23. अहो भगवन् ! तैजस् कार्मण शरीर देशबन्ध की स्थिति कितनी है ?

हे गौतम ! तैजस कार्मण शरीर के दो भंग होते हैं- अणाइया अपज्जवसिया (अनादि अनन्त) अभवी आसरी। अणाइया सपज्जवसिया (अनादि सान्त) भवी आसरी।

24. अहो भगवन् ! तैजस् कार्मण शरीर का अन्तर कितना है ?

हे गौतम ! तैजस् कार्मण शरीर का अन्तर नहीं होता है।

25. अल्पबहुत्व-सबसे थोड़े तैजस् कार्मण शरीर के अबंधक, उससे देशबन्धक अनंतगुणा।

26. पांच शरीरों के देशबन्ध, सर्वबन्ध और अबंध की शामिल अल्पबहुत्व- 1. सबसे थोड़े आहारक शरीर के सर्वबन्धक, 2. उससे आहारक शरीर के देशबन्धक संख्यात गुणा, 3. उससे वैक्रिय शरीर के सर्व बन्धक असंख्यात गुणा, 4. उससे वैक्रिय शरीर के देशबन्धक असंख्यात गुणा, 5. उससे तैजसकार्मण शरीर के अबंधक अनंत गुणा, किन्तु परस्पर में तुल्य होते हैं। 6. उससे औदारिक शरीर के सर्व बन्धक अनंत गुणा, 7. उससे औदारिक शरीर के अबंधक विशेषाधिक, 8. उससे औदारिक शरीर के देशबन्धक असंख्यात गुणा, 9. उससे तैजस् कार्मण शरीर के देशबंधक विशेषाधिक, 10. उससे वैक्रिय शरीर के अबंधक विशेषाधिक, 11. उससे आहारक शरीर के अबंधक विशेषाधिक।

ज्ञातव्य -

1. आहारक शरीर चौदहपूर्वधर मुनियों में से भी किसी-किसी के ही होता है, वे भी विशेष प्रयोजन होने पर ही आहारक शरीर धारण करते हैं। फिर सर्वबंध का काल भी सिर्फ एक समय का है, अतएव आहारक शरीर के सर्वबंधक सबसे अल्प हैं।

2. उनसे आहारक शरीर के देशबंधक संख्यात गुणे हैं, क्योंकि देशबंध का काल अन्तर्मुहूर्त है और पृथक्त्व हजार जीव ही आहारक शरीर वाले हो सकते हैं।

3. उनसे वैक्रिय शरीर के सर्वबंधक असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि वैक्रिय शरीर देव-नरक के भवधारणीय व मनुष्य/तिर्यच के लब्धिजन्य होने से आहारक शरीरधारी जीवों से वैक्रिय शरीर असंख्यातगुणे अधिक हैं।

4. उनसे वैक्रिय शरीरधारी देशबंधक जीव असंख्यातगुणे अधिक हैं, क्योंकि सर्वबंध से देशबंध का काल असंख्यातगुणा है अथवा प्रतिपद्यमान सर्वबंधक होते हैं और पूर्वप्रतिपन्न देशबंधक, अतः प्रतिपद्यमान की अपेक्षा पूर्व प्रतिपन्न असंख्यातगुणे हैं।

5. उनसे तैजस और कार्मण शरीर के अबंधक अनन्तगुणे हैं, क्योंकि इन दोनों शरीरों के अबंधक अयोगी केवली व सिद्ध भगवान् हैं, जो वनस्पतिकायिक जीवों के सिवाय शेष सर्व संसारी जीवों से अनन्त गुणे हैं। तैजस कार्मण शरीर सभी संसारी जीवों में होता है अतः ये दोनों शरीर परस्पर में तुल्य माने जाते हैं।
6. उनसे औदारिक शरीर के सर्वबंधक जीव अनन्तगुणे हैं, क्योंकि वनस्पतिकायिक जीव भी औदारिक शरीरधारियों में हैं, जो कि अनन्त हैं।
7. उनसे औदारिक शरीर के अबंधक जीव इसलिए विशेषाधिक हैं कि वैक्रिय व आहारक शरीर बंधकों के साथ विग्रह गति को प्राप्त जीव तथा सिद्ध जीव सर्वबंधकों से बहुत हैं।
8. उनसे औदारिक शरीर के देशबंधक असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि विग्रहगति के काल की अपेक्षा देशबंधक का काल असंख्यातगुणा है।
9. उनसे तैजस-कार्मण शरीर के देशबंधक विशेषाधिक हैं, क्योंकि सारे सयोगी संसारी जीव तैजस और कार्मण शरीर के देशबंधक होते हैं। इनमें विग्रहगति को प्राप्त औदारिक-सर्वबंधक और वैक्रियादि बंधक जीव भी आ जाते हैं। अतः औदारिक-देशबंधकों से ये विशेषाधिक बताए गए हैं।
10. उनसे वैक्रिय शरीर के अबंधक जीव विशेषाधिक हैं, क्योंकि वैक्रिय शरीर के बंधक बादर पर्याप्त वायुकाय, देव, तिर्यच पंचेन्द्रिय, मनुष्य और नारक हैं। शेष सभी संसारी जीव और सिद्ध भगवान् वैक्रिय के अबंधक ही हैं, इस अपेक्षा से वे तैजसादि देशबंधकों से विशेषाधिक बताए गए हैं।
11. उनसे आहारक शरीर के अबंधक विशेषाधिक हैं, क्योंकि आहारक शरीर सिर्फ चतुर्दशपूर्वधर मुनियों के ही होता है। वह भी क्वचित्-कदाचित् ही होता है। इस अपेक्षा से आहारक शरीर के अबंधक विशेषाधिक कहे गए हैं।

सेवं भन्ते ! सेवं भन्ते !!

श्री भगवती सूत्र शतक 25 उद्देशक 6 में नियंठा (निर्ग्रन्थ) का शोकड़ा चलता है, सो कहते हैं-

36 द्वार की संग्रहणी गाथाएँ -

पन्नवण वेय रागे, कप्प चरित्त पडिसेवणा णाणे ।

तित्थे लिंग सरीरे, खेत्ते काल गइ संजम णिगासे ।।1 ।।

जोगुवओग कसाए लेस्सा, परिणाम बंध वेदे य ।

कम्मोदीरण उवसंपजहणण, सण्णा य आहारे ।।2 ।।

भव आगरिसे कालंतरे य, समुग्घाय खेत्त फुसणा य ।

भावे परिमाणे वि य, अप्पाबहुयं णियंठा णं ।।3 ।।

1. प्रज्ञापन, 2. वेद, 3. राग, 4. कल्प, 5. चारित्र, 6. प्रतिसेवना, 7. ज्ञान, 8. तीर्थ, 9. लिंग, 10. शरीर, 11. क्षेत्र, 12. काल, 13. गति, 14. संयम, 15. निकास, 16. योग, 17. उपयोग, 18. कषाय, 19. लेस्या, 20. परिणाम, 21. बन्ध, 22. वेदन, 23. उदीरणा, 24. उपसम्पद्धान, 25. संज्ञा, 26. आहार, 27. भव, 28. आकर्ष, 29. कालमान, 30. अन्तर, 31. समुद्घात, 32. क्षेत्र, 33. स्पर्शना, 34. भाव, 35. परिमाण, 36. अल्पबहुत्व ।

द्वार- 'दरवाजा' जिसमें प्रवेश कर विषय-वस्तु का विशद वर्णन प्राप्त हो, उसे द्वार कहते हैं ।

शतक- उद्देशकों के समूह को शतक कहते हैं ।

उद्देशक- जिसमें विशेष-विषय का उद्देश्य करके विश्लेषण किया जाता है, उसे उद्देशक कहते हैं ।

1. प्रज्ञापन द्वार

जो बाह्य और आभ्यन्तर ग्रन्थ (परिग्रह) मिश्र्यात्व मोह और प्रारम्भिक तीन कषाय के चौक-मोहनीय की 13 सर्वघाति प्रकृति और इनकी सीमा में आने वाले 9 कषायों की ग्रन्थि से रहित से रहित होते हैं, वे निर्ग्रन्थ कहलाते हैं। उन सब के सर्वविरति चारित्र होते हुए भी चारित्र मोहनीय कर्म के क्षयोपशम, उपशम, क्षय आदि विभिन्नता के कारण निर्ग्रन्थ 5 प्रकार के बतलाये गये हैं- 1. पुलाक, 2. बकुश, 3. कुशील, 4. निर्ग्रन्थ, 5. स्नातक ।

1. पुलाक - पुलाक का अर्थ है निस्सार धान्यकण । जैसे खेत में गोधूम, शालि आदि के पौधों को काट कर पूले बांधकर ढेर लगाया जाता है । उसमें धान्य तो थोड़ा होता है मगर कचरा (धान्य के सिवाय का भाग) बहुत होता है । इसी प्रकार जिस साधु में गुण थोड़े और दुर्गुण अधिक हों वह पुलाक-निर्ग्रन्थ कहलाता है । पुलाक के दो भेद हैं- 1. लब्धि पुलाक, 2. आसेवना पुलाक ।

A. लब्धि पुलाक - पुलाक लब्धि से युक्त साधु 'लब्धि पुलाक' कहलाता है । जो कि प्रयोजन से विराधना करते हैं । प्रयोजन जिनशासन रक्षा एवं शासन-प्रभावना आदि हो सकते हैं । जब कोई चक्रवर्ती आदि जिनशासन तथा साधु-साधिवियों के लिए असह्य संकट उत्पन्न कर दे, अन्य उपाय संभव न होने पर पुलाक लब्धि के धारक मुनि, चक्रवर्ती की सेना व चक्रवर्ती को दण्ड देने हेतु पुलाक लब्धि का प्रयोग करते हैं । इस लब्धि प्रयोग से बलवाहन सहित चक्रवर्ती का भी विनाश कर सकते हैं । (कुछ आचार्यों का मत है कि प्रतिसेवना से (ज्ञानादि में अतिचार लगाना) जो ज्ञान पुलाक है, उन्हीं को यह लब्धि प्राप्त होती है । इनके अतिरिक्त दूसरा कोई लब्धि पुलाक नहीं होता है ।)

B. आसेवना पुलाक - आसेवना पुलाक के 5 भेद होते हैं-

- i. ज्ञान पुलाक- स्थलित आदि ज्ञान के अतिचारों का सेवन करने वाला । मति-श्रुतादि ज्ञान को दूषित करना ।
- ii. दर्शन पुलाक- शंका आदि दर्शन के अतिचारों का सेवन कर सम्यक्त्व को दूषित करने वाला ।

- iii. चारित्र पुलाक- मूलगुण-उत्तर गुणों में दोष लगाकर चारित्र की विराधना करने वाला।
- iv. लिंग पुलाक- बिना कारण अन्य लिंग को धारण करने वाला।
- v. यथासूक्ष्म पुलाक- मन से अकल्पनीय वस्तु को ग्रहण करने का विचार करने वाला और उपर्युक्त सभी में थोड़ा-थोड़ा दोष लगाने वाला।
2. बकुश - बकुश अर्थात् चित्तकबरा। जैसे पूर्वोक्त पूलों में से घास दूर कर दिया जाए और ऊँबियों (बालों) का ढेर किया जाए तो उसमें यद्यपि पहले की अपेक्षा कचरा बहुत कम हो गया है, फिर भी धान्य की अपेक्षा कचरा अधिक है, इसी प्रकार जो मुनि गुण-अवगुण दोनों के धारक हों, वे बकुश निर्ग्रन्थ कहलाते हैं। बकुश के दो भेद हैं- 1. शरीर बकुश, 2. उपकरण बकुश।
- A. शरीर बकुश - जो सौन्दर्य लालसा से हाथ, पैर, मुँह, केश आदि शरीर के अवयवों की शोभा-विभूषा करता है, और जो काय गुप्ति से रहित होता है, उसे शरीर बकुश कहते हैं।
- B. उपकरण बकुश - वस्त्र, पात्र आदि उपकरणों की विभूषा करने वाले 'उपकरण बकुश' कहलाते हैं। इसके पाँच भेद हैं- (अ) आभोग बकुश- जानते हुए दोष लगावें। (ब) अनाभोग बकुश- नहीं जानते हुए दोष लगावें। (स) संवृत्त बकुश- छिपकर दोष लगावें। (द) असंवृत्त बकुश- प्रकट रूप से दोष लगावें। (य) यथासूक्ष्म बकुश- उत्तर गुणों के विषय में प्रकट या अप्रकट रूप से कुछ प्रमाद सेवन करने वाला साधु।
3. कुशील - गोधूम (गेहूँ) और शालि की ऊँबियों के उस ढेर में से घास अलग कर दिया, मिट्टी आदि अलग कर दी, खलिहान में बैलों के पैरों से कुचलवा कर (दाँय करके) दाने अलग कर लिए, तो उस समय दाने और कचरा लगभग समान होता है, उसी प्रकार कुशील निर्ग्रन्थ प्रायः गुण-अवगुण की समानता के धारक होते हैं। इसके दो भेद हैं- 1. प्रतिसेवना कुशील, 2. कषाय कुशील।
- A. प्रतिसेवना कुशील - मूल गुण व उत्तरगुण की विराधना से दूषित चारित्र वाले साधु प्रतिसेवना कुशील कहलाते हैं। इसके पाँच भेद हैं-
- ज्ञान प्रतिसेवना कुशील- ज्ञान से आजीविका करने वाले।
 - दर्शन प्रतिसेवना कुशील- दर्शन से आजीविका करने वाले।
 - चारित्र प्रतिसेवना कुशील- चारित्र से आजीविका करने वाले।
 - लिंग प्रतिसेवना कुशील- लिंग (वेषादि) से आजीविका करने वाले।
 - यथासूक्ष्म प्रतिसेवना कुशील- तपादि की प्रशंसा से प्रसन्न होने वाले तथा देवादि की पदवी पाने की इच्छा करने वाले।
- B. कषाय कुशील - संज्वलन कषाय के उदय से चारित्र में पूर्ण निर्मलता नहीं होने से कषाय कुशील कहलाता है। इसके पाँच भेद हैं- ज्ञान, दर्शन, चारित्र, लिंग और यथासूक्ष्म।
- i-iii. जो क्रोध, मान आदि कषाय द्वारा ज्ञान, दर्शन, चारित्र की कषाय कुशील के स्तर तक विराधना करता है, उसे क्रमशः ज्ञान, दर्शन, चारित्र कषाय कुशील कहते हैं।
- iv लिंग- जो कषायपूर्वक वेष परिवर्तन करते हैं, उन्हें लिंग कषाय कुशील कहते हैं।
- v. यथासूक्ष्म- जो मन से क्रोधादि कषाय का सेवन करते हैं, उन्हें यथासूक्ष्म कषाय कुशील कहते हैं।
4. निर्ग्रन्थ - 'ग्रन्थ' मोह का पर्यायवाची शब्द है। जैसे उस धान्य की राशि को हवा में उफानने से उसमें का कचरा-मिट्टी आदि अलग हो जाता है, बहुत कम कंकर रह जाते हैं, इसी प्रकार जिनकी पूर्ण आत्मशुद्धि में किंचित् मात्र कमी शेष बची है, वे साधु निर्ग्रन्थ कहलाते हैं। मोहनीय की सम्पूर्ण 28 प्रकृतियों के ग्रन्थ से रहित अर्थात् उदय से रहित। इसके उपशान्त मोह निर्ग्रन्थ और क्षीण मोह निर्ग्रन्थ ये दो भेद हैं। इन दोनों के समयादि की अपेक्षा से पाँच-पाँच भेद हैं-
- A. प्रथम समयवर्ती निर्ग्रन्थ - 11वें, 12वें गुणस्थान के प्रथम समय वाले।
- B. अप्रथम समयवर्ती निर्ग्रन्थ - 11वें, 12वें गुणस्थान में जिसे एक समय से अधिक काल हो गया हो। अर्थात् प्रथम समय को छोड़कर शेष समयवर्ती निर्ग्रन्थ।
- C. चरम समयवर्ती निर्ग्रन्थ - 11वें, 12वें गुणस्थान के अन्तिम समय वाले।
- D. अचरम समयवर्ती निर्ग्रन्थ - 11वें गुणस्थान का काल जघन्य 1 समय व उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त का होता है। बारहवें गुणस्थान का काल जघन्य व उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होता है। इन दोनों गुणस्थान के अन्तिम समय के सिवाय शेष समयों में रहने वाले निर्ग्रन्थ।
- E. यथासूक्ष्म निर्ग्रन्थ - प्रथमादि समय की विवक्षा बिना सामान्य रूप से सभी समयों में रहे हुए निर्ग्रन्थ।

5. स्नातक - जैसे उस धान्य के समस्त कंकर चुन-चुन कर निकाल फेंके जाएं और धान्य को जल से धोकर स्वच्छ कर लिया जाए, उसी प्रकार जो मुनि पूर्ण विशुद्ध हो जाते हैं, वे स्नातक निर्ग्रन्थ कहलाते हैं। ये पूर्णतः शुद्ध, अखण्ड चारित्र वाले होते हैं। इनके पाँच भेद हैं- अच्छवी, अशबल, अकर्माश, संशुद्ध, अपरिस्रावी।
- A. अच्छवी - छवि अर्थात् शरीर। योगों का निरोध किये हुए 14वें गुणस्थानवर्ती।
- B. अशबल - दोष रहित, विशुद्ध चारित्रवान।
- C. अकर्माश - घातिकर्मों से रहित।
- D. संशुद्ध - केवलज्ञान-केवलदर्शन, यथाख्यात चारित्र के धारक, अरिहन्त, जिन, केवली आदि।
- E. अपरिस्रावी - योग क्रिया रहित होने से कर्म-बन्ध (आस्रव) रहित 14वें गुणस्थानवर्ती।

2. वेद द्वार

1. पुलाक में वेद पावे दो- पुरुष वेद, पुरुष नपुंसक वेद।
2. बकुश, प्रतिसेवना कुशील में तीन- स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद।
3. कषाय कुशील में तीन- स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, अवेदी हो तो उपशान्त वेदी या क्षीण वेदी।
4. निर्ग्रन्थ- अवेदी- उपशान्त वेदी या क्षीण वेदी।
5. स्नातक- अवेदी- क्षीण वेदी।

ज्ञातव्य-

पुलाक लब्धि स्त्रीवेदी को तथा स्त्री नपुंसक वेदी को नहीं होती। पुरुषवेदी तथा पुरुष नपुंसकवेदी को हो सकती है। पुलाक लब्धि के लिए जघन्य नौवें पूर्व की तीसरी आचार वस्तु का ज्ञान होना अनिवार्य है। स्त्रीवेदी को पूर्वों का ज्ञान नहीं हो पाता है। नपुंसकवेदी दो प्रकार के होते हैं- 1. पुरुष नपुंसक वेदी, 2. स्त्री नपुंसक वेदी। पुरुष नपुंसक वेदी चाहे वह जन्म नपुंसक हो अथवा बाद में बनाया हुआ कृत नपुंसक हो, दोनों ही प्रकार के पुरुष नपुंसक वेदी पुलाकादि लब्धि प्राप्त कर सकते हैं तथा उसी भव में कषाय कुशील साधु बनकर निर्ग्रन्थ और स्नातक पद को प्राप्त करते हुए मोक्ष में भी जा सकते हैं। नपुंसक वेदी में जो पुरुष नपुंसक होते हैं, वे संयम अंगीकार कर सकते हैं, पूर्वों का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं, अतः उनमें पुलाक लब्धि मानी गई है। स्त्री नपुंसक अत्यधिक विकृत मानसिक स्थिति वाले होने के कारण संयम पालन के तथा पूर्वज्ञान प्राप्ति के अयोग्य माने जाते हैं, इसलिए इनमें पुलाक लब्धि नहीं मानी जाती। स्त्रीवेद तथा स्त्री नपुंसक वेद से तात्पर्य यहाँ द्रव्यवेद की अपेक्षा से समझना चाहिए।

नवें गुणस्थान के प्रारंभ के भाग तक (नवें गुणस्थान का प्रारंभिक अल्प भाग सवेदी तथा बहुभाग अवेदी है) वेद का उदय रहता है अतः पुलाक, बकुश, प्रतिसेवना कुशील सवेदी ही होते हैं। पुलाक में छठा गुणस्थान, बकुश तथा प्रतिसेवना कुशील में छठा-सातवां गुणस्थान होता है।

कषाय कुशील में 6 से 10 तक गुणस्थान होते हैं। इनमें 9, 10 गुणस्थान में उपशम श्रेणि वाले उपशान्त वेदी तथा क्षपक श्रेणि वाले क्षीण वेदी कहलाते हैं। छठे से लेकर नवें गुणस्थान के शुरु के भाग तक वाले तो सवेदी ही होते हैं।

निर्ग्रन्थ में 11वाँ, 12वाँ गुणस्थान ही होता है। ये अवेदी ही होते हैं। ग्यारहवें गुणस्थान वाले उपशान्त वेदी तथा बारहवें गुणस्थान वाले क्षीण वेदी होते हैं।

स्नातक में 13वाँ, 14वाँ ये दो गुणस्थान होते हैं। ये क्षपक श्रेणि वाले ही प्राप्त करते हैं, इसलिए ये क्षीण वेदी ही होते हैं।

3. राग द्वार

1. पुलाकादि चार नियंठा सरागी होते हैं।
2. निर्ग्रन्थ- उपशान्त कषाय वीतरागी और क्षीण कषाय वीतरागी होते हैं।
3. स्नातक क्षीण कषाय वीतरागी होते हैं।

ज्ञातव्य-

राग का संबंध चारित्र मोहनीय से है। चारित्र मोहनीय का उदय पहले से लेकर दसवें गुणस्थान तक होता है। पुलाक, बकुश, प्रतिसेवना कुशील, कषाय कुशील ये चारों छठे से दसवें गुणस्थान वाले होने से सरागी होते हैं।

निर्ग्रन्थ और स्नातक में 11 से 14 गुणस्थान वाले होने से वीतरागी होते हैं। 11वें गुणस्थान वाले निर्ग्रन्थ उपशान्त कषाय वीतरागी तथा 12वें गुणस्थान वाले क्षीण कषाय वीतरागी कहलाते हैं। 13वें, 14वें गुणस्थानवर्ती स्नातक क्षीण कषाय वीतरागी कहलाते हैं। 'निर्ग्रन्थ' छद्मस्थ वीतरागी तथा 'स्नातक' केवली वीतरागी कहलाते हैं।

4. कल्प द्वार

1. पुलाक में कल्प पावे तीन- स्थित, अस्थित, स्थविरकल्प ।
2. बकुश, प्रतिसेवना में पावे चार- स्थित, अस्थित, स्थविर, जिनकल्प ।
3. कषाय कुशील में पावे पाँच- स्थित, अस्थित, स्थविर, जिनकल्प और कल्पातीत ।
4. निर्गन्ध और स्नातक में पावे तीन- स्थित, अस्थित, कल्पातीत ।

ज्ञातव्य-

कल्प- जिन मर्यादाओं का विधि या निषेध रूप से पालन किया जाता है, उसे 'कल्प' कहते हैं। कल्प को मुख्य रूप से पाँच प्रकार से बतलाया है- (अ) स्थित कल्प, (ब) अस्थित कल्प, (स) स्थविर कल्प, (द) जिनकल्प, (य) कल्पातीत ।

प्रथम और अन्तिम तीर्थकर के साधुओं में 'अचेल कल्प' आदि दस कल्प होते हैं। क्योंकि उन्हें उनका पालन करना आवश्यक होता है। इसलिए वे स्थित कल्प में होते हैं। बीच के बाईस तीर्थकरों के साधुओं के लिये चार कल्प नियमा होते हैं और छह कल्प उनके नियमा नहीं होते हैं। इस तरह सभी कल्प का पालन करना उनके लिए आवश्यक नहीं है। इसलिए वे अस्थित कल्प वाले होते हैं।

प्रत्येक बुद्ध तथा छद्मस्थ तीर्थकर जब सकषायी होते हैं तब उनमें कषाय कुशील में भी कल्पातीतपना पाया जाता है।

निर्गन्ध और स्नातक में जिनकल्प और स्थविरकल्प के धर्म नहीं होते। इसलिए ये दोनों कल्पातीत ही होते हैं। (टीका)।

पंचाशक ग्रन्थ में दस कल्प इस प्रकार बतलाये गये हैं-

1. अचेल कल्प, 2. औद्देशिक कल्प, 3. राजपिण्ड, 4. शय्यातर, 5. मास कल्प, 6. चातुर्मास कल्प, 7. व्रत, 8. प्रतिक्रमण, 9. कृतिकर्म, 10. पुरुष ज्येष्ठ ।

दस कल्प का अर्थ इस प्रकार है-

1. अचेल कल्प- पहले व चौबीसवें तीर्थकर के साधुओं के सफेद रंग के वस्त्र रखने का कल्प है। ये वस्त्र कम कीमत के होते हैं तथा सीमित परिमाण में रखे जाते हैं। शेष बावीस तीर्थकर के साधु भी सफेद कपड़े ही रखते हैं किन्तु गवेषणा करने पर भी सफेद कपड़ा न मिले तो रंगीन वस्त्र भी ले लेते हैं वह उनके लिये दोषोत्पत्ति का कारण नहीं होता। पांच वर्ण के वस्त्रों में से कोई भी प्रकार का वस्त्र रख सकते हैं। रंग के प्रति उनकी किसी भी प्रकार की आसक्ति नहीं होती।
2. औद्देशिक कल्प- पहले व चौबीसवें तीर्थकर के साधु का अन्य संभोगी साधु के निमित्त से बनाया हुआ आहार दूसरे साधु के नहीं लेने का कल्प है यदि लेवे तो औद्देशिक दोष लगे। शेष बावीस तीर्थकर के साधु उक्त औद्देशिक आहार ले सकते हैं।
3. राजपिण्ड- पहले व चौबीसवें तीर्थकर के साधु राजपिण्ड- यानी राज्याभिषेक पूर्वक राज्य का संचालन करने वाले राजा के वास्ते बनाया हुआ आहार- नहीं लेने का कल्प है। शेष बावीस तीर्थकर के साधु राजपिण्ड भी ले सकते हैं। किन्तु उसके प्रति उनका आग्रह भाव नहीं रहता है।
4. शय्यातर- चौबीस ही तीर्थकरों के साधुओं का शय्यातर (जिसके मकानादि में रात्रि में रहे, उसके यहाँ से अगले दिन से) के यहाँ से आहार नहीं लेने का कल्प है।
5. मास कल्प- पहले व चौबीसवें तीर्थकर के साधुओं के लिए नव कल्पी विहार बताया गया है। शेष बावीस तीर्थकरों के साधुओं के लिये नव कल्पी विहार की अनिवार्यता नहीं बतायी गयी है। वे अपनी इच्छानुसार विहार कर सकते हैं।
6. चातुर्मास कल्प - पहले व चौबीसवें तीर्थकर के साधुओं का वर्षाकाल में चार महीने एक स्थान पर रहने का कल्प है। बावीस तीर्थकरों के साधुओं के लिये यह नियम अनिवार्य नहीं है।
7. व्रत - पहले व चौबीसवें तीर्थकर के साधु-साध्वी के लिये पांच महाव्रत और छठा रात्रि भोजन त्याग का कल्प है। बावीस तीर्थकरों के साधुओं के लिए चार महाव्रत व रात्रि भोजन त्याग का कल्प है। चार महाव्रतों में पांचों महाव्रतों का समावेश हो जाता है।
8. प्रतिक्रमण - पहले व चौबीसवें तीर्थकर के साधु-साध्वी के लिये देवसिय (दैवसिक-दिवस सम्बन्धी), राइय (रात्रिक-रात्रि सम्बन्धी), पक्खी, चौमासी व संवत्सरी- ये पांच प्रतिक्रमण करने का कल्प है। बावीस तीर्थकरों के साधुओं के लिए दोष लगने पर प्रतिक्रमण करने का कल्प है।
9. कृतिकर्म - चौबीस तीर्थकरों के साधुओं के लिये यह कल्प है कि छोटी दीक्षा वाले साधु बड़ी दीक्षा वालों को वंदना नमस्कार करते हैं उनका गुणग्राम करते हैं।

10. पुरुष ज्येष्ठ - चौबीस ही तीर्थकरों के लिये यह कल्प है कि पुरुष की प्रधानता होने से चाहे सौ वर्ष की दीक्षित साध्वी हो तो भी वह नवदीक्षित साधु को वंदना नमस्कार करती है।
चूँकि पहले तीर्थकर के साधु ऋजु जड़ (सरल किन्तु मन्द बुद्धि) होते हैं और अन्तिम तीर्थकर के साधु वक्र जड़ (प्रकृति के बाँके-टेढ़े और बुद्धि से भी मन्द) होते हैं। शेष बावीस तीर्थकर के साधु ऋजु प्राज्ञ (प्रकृति के सरल और तीक्ष्ण बुद्धि वाले) होते हैं। इसी कारण पहले व चौबीसवें तीर्थकर के साधुओं के कल्प में और शेष बावीस तीर्थकरों के साधुओं के कल्प में अन्तर है।
पहले और अन्तिम तीर्थकर के साधुओं में दस ही कल्प नियमा होते हैं। बीच के 22 तीर्थकरों के साधुओं में चार कल्प (चौथा, सातवाँ, नवाँ, दसवाँ) की नियमा और छह कल्प की भजना होती है।
शास्त्रोक्त मर्यादानुसार वस्त्र पात्रादि रखना स्थविरकल्प है। जघन्य दो- मुखवस्त्रिका और रजोहरण, उत्कृष्ट 12 उपकरण रखना जिनकल्प है। जिनकल्पी में छठा-सातवाँ ये दो गुणस्थान माने जाते हैं।
अरिहन्त, केवली, तीर्थकर कल्पातीत होते हैं।

5. संयम द्वार

1. पुलाक, बकुश, प्रतिसेवना कुशील में संयम पावे दो- सामायिक और छेदोपस्थापनीय।
2. कषाय कुशील में संयम पावे चार- सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहार विशुद्धि और सूक्ष्म सम्पराय।
3. निर्ग्रन्थ और स्नातक में एक- यथाख्यात संयम (चारित्र)

ज्ञातव्य-

पुलाक में छठा गुणस्थान तथा बकुश, प्रतिसेवना कुशील में छठा-सातवाँ गुणस्थान होता है अतः सामायिक और छेदोपस्थापनीय ये दो संयम मिलते हैं। पुलाक, बकुश व प्रतिसेवना कुशील ये तीनों नियंते दोष लगाने वाले होते हैं, इसलिए इनमें परिहारविशुद्धि, सूक्ष्म सम्पराय तथा यथाख्यात चारित्र नहीं मिलते। ये तीनों प्रकार के संयम (चारित्र) तो निर्दोष संयम पालन करने वालों को ही प्राप्त होते हैं। कषाय कुशील में 6 से 10 तक गुणस्थान पाये जाते हैं, अतः छठे से नवें गुणस्थान तक सामायिक, छेदोपस्थापनीय चारित्र, छठे-सातवें गुणस्थान में परिहारविशुद्धि चारित्र हो सकता है तथा 10वें गुणस्थान की अपेक्षा सूक्ष्म सम्पराय चारित्र मिलता है। निर्ग्रन्थ और स्नातक 11 से 14 गुणस्थानवर्ती होने से इनमें एक मात्र यथाख्यात चारित्र ही मिलता है।

6. प्रतिसेवना द्वार

1. पुलाक तथा प्रतिसेवना कुशील- ये दोनों मूलगुण तथा उत्तरगुण के प्रतिसेवी होते हैं।
2. बकुश मूलगुण के अप्रतिसेवी तथा उत्तरगुण के प्रतिसेवी होते हैं।
3. कषायकुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक ये तीनों अप्रतिसेवी होते हैं।

ज्ञातव्य-

अहिंसादि महाव्रतों में दोष लगाने वाले मूलगुण प्रतिसेवी कहलाते हैं तथा अनागत, अतिक्रान्त, कोटिसहित आदि दस प्रकार के प्रत्याख्यानों एवं पिण्ड विशुद्धि (आहार, वस्त्र, पात्र, शय्या सम्बन्धी) आदि उत्तरगुणों में दोष लगाने वाले उत्तरगुण प्रतिसेवी कहलाते हैं। जो संयम विरुद्ध आचरण करते हैं, वे प्रतिसेवी तथा जो संयम में किसी प्रकार का दोष नहीं लगाते, वे अप्रतिसेवी कहलाते हैं।

पुलाक लब्धि का जब प्रयोग होता है, तब प्रयोग करने वाला साधु नियमा प्रतिसेवी होता है। यदि चक्रवर्ती की सेना का विनाश आदि करता है तो उस समय वह मूलगुण प्रतिसेवी होता है और यदि सेना को भयभीत आदि करता है तो उस समय वह उत्तरगुण प्रतिसेवी होता है। लब्धि प्रयोग का संकल्प हो तब भी वह उत्तरगुण प्रतिसेवी होता है।

जिसके पास लब्धि है, परन्तु परिणामों की शुद्धता के साथ यदि वह शुद्ध संयम के पालन में संलग्न रहता है तो वह कषायकुशील आदि साधु अप्रतिसेवी होता है। लब्धि प्रयोग की आलोचना आदि से विशुद्धि कर लेने पर वह साधु अप्रतिसेवी बन जाता है। जैसे शास्त्रोक्त कारणों से नदी आदि पार करते हुए भी अप्रतिसेवी रह जाता है, वैसे ही आहारक शरीर पुष्ट आलम्बनों से बनाये जाने से आहारक समुद्घात में आगमकारों ने प्रतिसेवना नहीं मानी है।

आहारक लब्धि का प्रयोग कषाय कुशील साधु विराधना की प्रवृत्ति से नहीं करता है, अतः मूलगुण-उत्तरगुण में दोष नहीं लगाता, इसीलिए उसे अप्रतिसेवी माना जाता है। लब्धि का प्रयोग प्रमाद अवस्था में अर्थात् छठे गुणस्थान में होता है।

कषाय कुशील साधु-साध्वी अप्रतिसेवी होते हुए भी उनके संज्वलन कषाय का उदय रहने के कारण वे कषाय कुशील कहे जाते हैं। निर्ग्रन्थ और स्नातकों के तो किसी भी प्रकार की कषाय का उदय होता ही नहीं है।

7. ज्ञान द्वार

1. पुलाक, बकुश, प्रतिसेवना कुशील में ज्ञान पावे- दो अथवा तीन। दो हो तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान। तीन हो तो मति, श्रुत व अवधिज्ञान।
2. कषाय कुशील और निर्ग्रन्थ में ज्ञान पावे- दो, तीन अथवा चार। दो हो तो मति व श्रुतज्ञान। तीन हो तो मति, श्रुत व अवधि ज्ञान अथवा मति, श्रुत व मनःपर्यव ज्ञान। चार हो तो मति, श्रुत, अवधि व मनःपर्यवज्ञान।
3. स्नातक में ज्ञान पावे एक- केवलज्ञान।

श्रुत (ज्ञान) की मात्रा -

1. पुलाक जघन्य नवें पूर्व की तीसरी आचार वस्तु, उत्कृष्ट सम्पूर्ण नौ पूर्व का अध्ययन करते हैं।
2. बकुश, प्रतिसेवना कुशील जघन्य आठ प्रवचन माता (5 समिति, 3 गुप्ति), उत्कृष्ट दस पूर्व का अध्ययन करते हैं।
3. कषाय कुशील, निर्ग्रन्थ जघन्य आठ प्रवचन माता, उत्कृष्ट चौदह पूर्वों का अध्ययन करते हैं।
4. स्नातक, केवलज्ञानी होने से श्रुत व्यतिरिक्त अर्थात् श्रुतज्ञान की सीमा से परे होते हैं।

ज्ञातव्य-

पुलाक, बकुश व प्रतिसेवना कुशील, ये तीनों प्रतिसेवी होते हैं, इसलिए इनको मनःपर्यव ज्ञान नहीं हो पाता। मनःपर्याय ज्ञान ऋद्धि प्राप्त अप्रमत्त अनगार को ही होता है।

कषाय कुशील साधु उत्कृष्ट चौदह पूर्वों का ज्ञान सीखते हैं। यद्यपि चौदह पूर्व दृष्टिवाद नामक बारहवें अंगशास्त्र के पाँच विभागों में से एक विभाग है, किन्तु चौदह पूर्वों का यह विभाग सबसे महत्त्वपूर्ण एवं अतिविशाल विभाग है। भगवती शतक 5 उद्देशक 4 में 14 पूर्वों को केवली के समान अर्थात् श्रुत केवली कहा है। चौदह पूर्वों का ज्ञाता शेष चारों विभागों का भी सम्यक् ज्ञाता होता है, इस अपेक्षा से यहाँ चौदह पूर्वों के ज्ञान को उत्कृष्ट श्रुत में बतलाया गया है।

8. तीर्थ द्वार

1. पुलाक, बकुश, प्रतिसेवना कुशील ये तीनों तीर्थ में ही होते हैं।
2. कषाय कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक, ये तीनों तीर्थ तथा अतीर्थ दोनों में होते हैं।

ज्ञातव्य-

तीर्थकर भगवान द्वारा चतुर्विध संघ (साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका) रूप तीर्थ की विद्यमानता में जो साधु-साध्वी मिलते हैं वे तीर्थ में कहलाते हैं तथा जो तीर्थ प्रवर्तन के पहले अथवा तीर्थ विच्छेद के बाद जो प्रत्येक बुद्धादि साधु होते हैं, वे अतीर्थ में कहलाते हैं।

छद्मस्थ अवस्था में तीर्थकर जब छठे से दसवें गुणस्थान में कषाय कुशील के रूप में होते हैं, तब वे भी अतीर्थ में माने जाते हैं। अतीर्थ में होने वाले कषाय कुशील साधु-साध्वी श्रेणि चढ़ते हैं तब 11वें, 12वें गुणस्थान में निर्ग्रन्थ तथा केवली बन जाने पर वे ही स्नातक कहलाते हैं, इसी कारण से कषाय कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक इन तीनों को अतीर्थ में भी माना जाता है। जैसे- मरुदेवी माता आदि।

अतीर्थ के समय में भावों के आधार पर विशुद्ध परिणामों से संयम पर्याय का पालन करता हुआ, क्षपक श्रेणि चढ़ता हुआ जीव मोक्ष प्राप्त कर सकता है। बाह्य आचार सम्बन्धी दोष नहीं लगने से अतीर्थ में कषाय कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक ये तीन भेद ही हो सकते हैं। पुलाक, बकुश, प्रतिसेवना कुशील ये तीनों अतीर्थ में नहीं हो सकते।

तीर्थ प्रवर्तन के पश्चात् जिन्हें आचार पालन में दोष लग सकता है, वे तीर्थ में रहकर विशुद्ध भी बन सकते हैं, अतः तीर्थ में पुलाकादि छहों नियंते माने जाते हैं।

9. लिंग द्वार

पुलाक आदि छहों नियंठा द्रव्यलिंग आसरी-स्वलिंग, अन्यलिंग व गृहस्थलिंग में होते हैं। भाव लिंग आसरी-स्वलिंग में ही होते हैं।

ज्ञातव्य-

लिंग अर्थात् पहचानने का साधन। लिंग के दो भेद होते हैं- 1. द्रव्यलिंग, 2. भावलिंग। द्रव्यलिंग के दो भेद हैं- स्वलिंग और अन्यलिंग। रजोहरण, मुखवस्त्रिका, सफेद वस्त्र धारण करना इत्यादि द्रव्य से स्वलिंग कहलाते हैं। अन्यलिंग के दो भेद हैं-अन्यतीर्थिक लिंग और गृहस्थलिंग। सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप की आराधना भावलिंग है। यह भावलिंग केवल प्ररूपित सर्वविरति धर्म का पालन करने वालों में ही होता है, अतः इसे भाव

की अपेक्षा स्वलिंग भी कहा जाता है।

पुलाकादि छहों नियंठा द्रव्यलिंग की अपेक्षा से- स्वलिंग, अन्यलिंग तथा गृहस्थलिंग इन तीनों लिंगों में हो सकते हैं किन्तु भावलिंग में तो उनमें ज्ञान-दर्शन-चारित्र्य रूप स्वलिंग अनिवार्य है। स्नातक (केवली) बनने के बाद यदि लम्बी स्थिति शेष हो तो वे अवश्य ही द्रव्यलिंग की अपेक्षा भी स्वलिंग (जैन साधु का वेष) धारण कर लेते हैं। मरुदेवी माता केवलज्ञान पाने के अन्तर्मुहूर्त बाद ही मोक्ष में चली गई, इसलिए साधु का वेष धारण नहीं कर पायी अतः गृहस्थलिंग सिद्ध मानी जाती है, जबकि भरत महाराजा को आरीसा भवन में केवलज्ञान हो जाने पर भी लम्बी स्थिति शेष होने के कारण, उन्होंने गृहस्थलिंग को छोड़कर स्वलिंग (जैन साधु का वेष) धारण किया था, इसलिए वे स्वलिंग सिद्ध माने जाते हैं।

पुलाक को अन्यलिंग, गृहस्थलिंग में किस अपेक्षा से समझना-

पुलाक लब्धि वाला साधु जिसे एक देश से दूसरे देश में जाना आवश्यक हो, बीच में ऐसा राज्य आता हो, जिसमें जैन साधुओं के प्रवेश पर पाबन्दी हो, वहाँ अन्यलिंग अथवा गृहस्थलिंग धारण करके उस राज्य में प्रवेश कर लें। वहाँ किसी के पहचान जाने पर कोई आपत्ति खड़ी कर दे, बहुत बड़ा संकट उपस्थित करदे, अन्य कोई समाधान नहीं निकले तो विवश होकर जिनशासन की एवं संघ की सुरक्षा के लिए वह साधु उसी अन्यलिंग अथवा गृहस्थलिंग में रहते हुए ही पुलाक लब्धि का प्रयोग कर ले, इस अपेक्षा से अन्यलिंग, गृहस्थलिंग पुलाक में माना जाता है।

10. शरीर द्वार

1. पुलाक, निर्ग्रन्थ और स्नातक में शरीर पावे तीन- औदारिक, तैजस, कार्मण।
2. बकुश, प्रतिसेवना कुशील में शरीर पावे तीन अथवा चार- तीन हो तो पूर्वोक्त, चार हो तो औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कार्मण।
3. कषाय कुशील में तीन, चार अथवा पाँच- तीन हो तो- औदारिक, तैजस, कार्मण। चार हो तो- औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कार्मण। पाँच हो तो- औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण।

ज्ञातव्य-

पुलाक, निर्ग्रन्थ और स्नातक वैक्रिय, आहारक आदि लब्धि का प्रयोग नहीं करते हैं, अतः इनमें औदारिक, तैजस, कार्मण ये तीन शरीर होते हैं। बकुश, प्रतिसेवना व कषाय कुशील भी जब वैक्रिय, आहारक लब्धि का प्रयोग नहीं करते हैं, तब उनमें ये तीनों ही शरीर होते हैं। सातवें से चौदहवें गुणस्थानवर्ती में भी लब्धि का प्रयोग नहीं होने के कारण ये तीनों ही शरीर होते हैं। स्नातक में 14वें गुणस्थान में शरीरस्थ होते हुए भी अयोगी हो जाने से उनमें शरीर नामकर्म का उदय नहीं माना जाता है।

बकुश, प्रतिसेवना कुशील में वैक्रिय लब्धि हो सकती है, आहारक लब्धि नहीं। क्योंकि इनमें उत्कृष्ट दस पूर्वों तक का ही ज्ञान होता है। जबकि आहारक लब्धि के लिए चौदह पूर्वों का ज्ञान अनिवार्य होता है। बकुश, प्रतिसेवना कुशील जब छठे गुणस्थान में वैक्रिय लब्धि का प्रयोग करते हैं तब उनमें वैक्रिय शरीर भी पाया जाता है, अतः चार शरीर भी माने हैं।

कषाय कुशील में चौदह पूर्वों का ज्ञान हो सकता है। जिनमें यह ज्ञान होता है, उनमें से किसी-किसी को आहारक लब्धि भी प्राप्त हो सकती है। जिनको आहारक लब्धि प्राप्त हो जाती है, वे छठे गुणस्थान में इस लब्धि का जब प्रयोग करते हैं, तब उनमें आहारक शरीर भी होता है।

कषाय कुशील में चार शरीर का विकल्प एक ही तरह से बतलाया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि बिना वैक्रिय शरीर प्राप्ति के आहारक शरीर नहीं होता। यदि ऐसा संभव होता तो चार शरीर का दूसरा विकल्प-औदारिक, आहारक, तैजस और कार्मण का बता दिया होता, किन्तु ऐसा नहीं बतलाया। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि आहारक लब्धि वालों को वैक्रिय लब्धि अवश्य प्राप्त हो जाती है।

यह अलग बात है कि वैक्रिय व आहारक लब्धि का प्रयोग एक साथ नहीं हो पाता। अतः लब्धि (शक्ति) की अपेक्षा कषाय कुशील साधु में एक साथ पाँच शरीर तथा प्रवृत्ति की अपेक्षा एक साथ अधिकतम चार शरीर (वैक्रिय, आहारक में से कोई एक) हो सकते हैं।

11. क्षेत्र द्वार

1. छहों नियंठा जन्म और सद्भाव की अपेक्षा कर्मभूमि में होते हैं।
2. संहरण की अपेक्षा पुलाक को छोड़कर शेष सभी नियंठा कर्मभूमि-अकर्मभूमि दोनों में होते हैं।

ज्ञातव्य-

जहाँ असि, मसि, कृषि होती है। तीर्थकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, केवली, साधु, साध्वी आदि होते हैं जहाँ जप-तप-संयम आदि आध्यात्मिक साधना हो सकती है, वह क्षेत्र कर्मभूमि कहलाता है। जहाँ असि, मसि, कृषि नहीं होती, वृक्षों (विशेष प्रकार की वनस्पति) द्वारा आवश्यकताओं की पूर्ति होती है, युगल रूप में मनुष्यों का जन्म होता है, तीर्थकर, केवली, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव आदि जहाँ नहीं होते, जहाँ जप-तप-संयम आदि आध्यात्मिक साधना न हो सकें, ऐसे क्षेत्र अकर्मभूमि कहलाते हैं।

पुलाक लब्धि वालों का देवता संहरण नहीं कर सकते हैं। इसलिए पुलाक लब्धि वाले जन्म तथा सद्भाव की अपेक्षा कर्मभूमि क्षेत्र में ही मिलते हैं। सात बोलों का संहरण नहीं होता है- 1. संयमशीला साध्वी, 2. अवेदी, 3. परिहारविशुद्धि चारित्री, 4. पुलाक साधु, 5. अप्रमत्त संयत, 6. चौदह पूर्वधारी और 7. आहारक लब्धि वाले साधु।

यद्यपि निर्ग्रन्थ और स्नातक को संहरण की अपेक्षा अकर्मभूमि में भी माना जाता है, तथापि उसका तात्पर्य भूतकालीन पर्याय की अपेक्षा समझना चाहिए। अर्थात् प्रमादी साधु जो कि बकुश, प्रतिसेवना कुशील, कषाय कुशील हो (छठा गुणस्थानवर्ती) उसका संहरण (देवतादि द्वारा कौतुकता, वैर भावना, दुःख देने आदि के निमित्त से जबरदस्ती उठाकर अन्यत्र ले जाना 'संहरण' कहलाता है) होता है, बाद में वह प्रमादी साधु अपने विशुद्ध अध्यवसायों से संहरण किये गये क्षेत्र (अकर्मभूमिज) में ही निर्ग्रन्थ एवं स्नातक बन जाता है। इस कारण से निर्ग्रन्थ और स्नातक का पूर्व पर्याय में संहरण माना जाता है।

12. काल द्वार

1. अवसर्पिणी काल में- पुलाक, निर्ग्रन्थ और स्नातक- जन्म की अपेक्षा तीसरे-चौथे आरे में, सद्भाव की अपेक्षा तीसरे, चौथे, पाँचवें आरे में होते हैं।
2. बकुश, प्रतिसेवना कुशील और कषाय कुशील- जन्म और सद्भाव की अपेक्षा तीसरे, चौथे, पाँचवें आरे में होते हैं।
3. उत्सर्पिणी काल में- छहों नियंठा जन्म की अपेक्षा दूसरे, तीसरे, चौथे आरे में तथा सद्भाव की अपेक्षा तीसरे चौथे आरे में होते हैं।
4. नो अवसर्पिणी नो उत्सर्पिणी काल में- छहों नियंठा जन्म और सद्भाव की अपेक्षा चौथे पलिभाग में (महाविदेह क्षेत्र में) होते हैं।
5. संहरण आसरी- पुलाक का संहरण नहीं होता। शेष 5 नियंठों का छहों आरों और चारों पलिभागों में संहरण हो सकता है।

ज्ञातव्य-

पलिभाग शब्द का अर्थ है-समान काल। चार पलिभाग इस प्रकार हैं- 1. देवकुरु-उत्तरकुरु, 2. हरिवास-रम्यक्वास, 3. हेमवत-ऐरण्यवत, 4. महाविदेह क्षेत्र। अर्थात् देवकुरु-उत्तरकुरु क्षेत्र में अवसर्पिणी काल के पहले आरे के समान। हरिवास रम्यक्वास क्षेत्र में दूसरे आरे के समान। हेमवत-ऐरण्यवत क्षेत्र में तीसरे आरे के समान तथा महाविदेह क्षेत्र में चौथे आरे के समान काल (स्थिति) सदा-सर्वदा रहता है, इस कारण से ये चारों 'पलिभाग' के नाम से जाने जाते हैं। इसी कारण से इन चारों को नो उत्सर्पिणी नो अवसर्पिणी काल के विभाग भी कहे जाते हैं।

जिस काल में जीवों के आयुष्य, बल, शरीर, वर्णादि में उत्तरोत्तर कमी हो, उसे अवसर्पिणी काल कहते हैं। जिस काल में आयुष्य, बल, शरीर, वर्णादि में उत्तरोत्तर वृद्धि हो, उसे उत्सर्पिणी काल कहते हैं। अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी इन दोनों में प्रत्येक का काल दस कोटाकोटि सागरोपम का होता है। ये दोनों प्रकार के काल छह-छह आरों के रूप में पाँच भरत और पाँच ऐरवत क्षेत्र में ही होते हैं। जिस काल में भावों की हानि-वृद्धि न हो, सदा

एक सा काल रहे, उसे नो अवसर्पिणी नो उत्सर्पिणी काल कहते हैं।

3. गति द्वार

नियंठा	जघन्य गति	उत्कृष्ट गति
1. पुलाक	पहला देवलोक	आठवाँ देवलोक
2. बकुश, प्रतिसेवना	पहला देवलोक	बारहवाँ देवलोक
3. कषाय कुशील	पहला देवलोक	अनुत्तर विमान
4. निर्ग्रन्थ पाँच अनुत्तर विमान में जाते हैं।		
5. स्नातक	मोक्ष में जाते हैं।	
जघन्य स्थिति	उत्कृष्ट स्थिति	
1. पुलाक	पृथक्त्व पल्योपम	18 सागरोपम
2. बकुश, प्रतिसेवना	पृथक्त्व पल्योपम	22 सागरोपम
3. कषाय कुशील	पृथक्त्व पल्योपम	33 सागरोपम
4. निर्ग्रन्थ अजघन्य अनुत्कृष्ट	33 सागरोपम	
5. स्नातक	सादि-अनन्त।	

पदवी -

1. पुलाक, बकुश, प्रतिसेवना कुशील आराधक हो तो चार पदवी (अहमिन्द्र छोड़कर) में से एक पदवी पावे।
2. कषाय कुशील आराधक हो तो पाँच पदवी में से एक पदवी पावे।
3. निर्ग्रन्थ एक अहमिन्द्र की पदवी पावे।
4. स्नातक मोक्ष में ही जाता है।
5. ये सभी नियंटे विराधक हो तो चारों गतियों में कहीं भी उत्पन्न हो सकते हैं।

ज्ञातव्य-

यहाँ आराधक साधु की अपेक्षा गति, स्थिति, पदवी का वर्णन किया गया है। पुलाक लब्धि वाला साधु पुलाकपने में न तो आयुष्य का बन्ध करता है और न ही मरण को प्राप्त होता है, अतः उसकी न गति होती है, न स्थिति। परन्तु पुलाकपने को छोड़कर जब कषाय कुशीलादि में आ जाते हैं, उस समय उनके पास पुलाक लब्धि तो रहती है, प्रयोग नहीं होता। मूलभाव एवं पूर्व पर्याय की अपेक्षा से उसकी गति एवं स्थिति दोनों मानी जाती है। जिसने पुलाक लब्धि का प्रयोग करने के बाद उसकी आलोचना आदि करके शुद्धि कर ली है, वह आराधक बन जाता है और कषाय कुशीलपन को प्राप्त कर यदि अन्तर्मुहूर्त में ही काल कर जाये तो उसका मरण, पुलाक का मरण माना जाता है, इसी अपेक्षा से उसकी गति और स्थिति बतलाई है। यदि अन्तर्मुहूर्त बाद काल करे तो कषायकुशील का ही मरण माना जाता है, न कि पुलाक साधु का।

आराधक पुलाक जघन्य पहले देवलोक में, उत्कृष्ट आठवें देवलोक तक जाता है। लब्धि प्रयोग की आलोचना नहीं करने पर विराधक बन जाते हैं, अतः वे चारों गतियों में जा सकते हैं।

बकुश और प्रतिसेवना कुशील साधु यदि पूर्व में लगे हुए दोषों की आलोचना कर लेते हैं तो वे आराधक माने जाते हैं। जब तक पूर्वकृत दोषों की आलोचना नहीं करे तब तक शुद्ध संयम का वर्तमान में पालन करने पर भी वे विराधक रह जाते हैं। यहाँ पर जो गति-स्थिति-पदवी बतलाई हैं, वह आराधक की अपेक्षा से समझना चाहिए।

इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश, लोकपाल और अहमिन्द्र ये पाँच मोटी पदवियाँ मानी गई हैं। बारहवें देवलोक तक प्रारंभ की चार पदवियाँ होती हैं। नवगैवेयक और पाँच अनुत्तर विमान में एक मात्र अहमिन्द्र की पदवी पाई जाती है। कषाय कुशील, मूलगुण-उत्तरगुण में दोष नहीं लगाते, इसीलिए आराधक होते हैं, परन्तु संज्वलन कषाय के उदय से परिणामों की धारा में उतार आने पर विराधक हो सकते हैं।

निर्ग्रन्थ, निर्ग्रन्थपने में तो आराधक ही होता है, परन्तु निर्ग्रन्थ अवस्था से नीचे के गुणस्थानों में आने पर वैमानिक के अलावा अन्य स्थानों का आयुष्य भी बांध सकता है, कोई विराधक भी हो जाता है तथा अन्य गतियों में भी जा सकता है। उपशम श्रेणि वाले निर्ग्रन्थ 11वें गुणस्थान में रहते यदि काल करते हैं तो पाँच अनुत्तर विमान में ही जाते हैं, इसलिए एक अहमिन्द्र की पदवी ही पाते हैं। यद्यपि प्रथम तीन संहनन वाले मनुष्य उपशम श्रेणि कर सकते हैं, किन्तु जो वज्रऋषभ नाराच संहनन वाले होते हैं, वे ही मरण को प्राप्त कर पाँच अनुत्तर विमान में उत्पन्न होते हैं। जो ऋषभनाराच और नाराच संहनन वाले होते हैं, वे उपशम श्रेणि तो प्राप्त कर लेते हैं, किन्तु वे उपशम श्रेणि में रहते मरण को प्राप्त नहीं होते हैं।

आराधक साधु यदि वैमानिक देवलोकों में उत्पन्न होता है तो कम से कम दो पल्योपम की स्थिति तो प्राप्त करता ही है।

इसीलिए पुलाक आदि नियंटों में जघन्य स्थिति पृथक्त्व पल्योपम की बतलाई गई है।

14. संयम-स्थान द्वार

1. पुलाकादि चार नियंटों में संयम-स्थान असंख्यात होते हैं।
2. निर्ग्रन्थ, स्नातक में संयम-स्थान एक ही होता है।

अल्पबहुत्व-

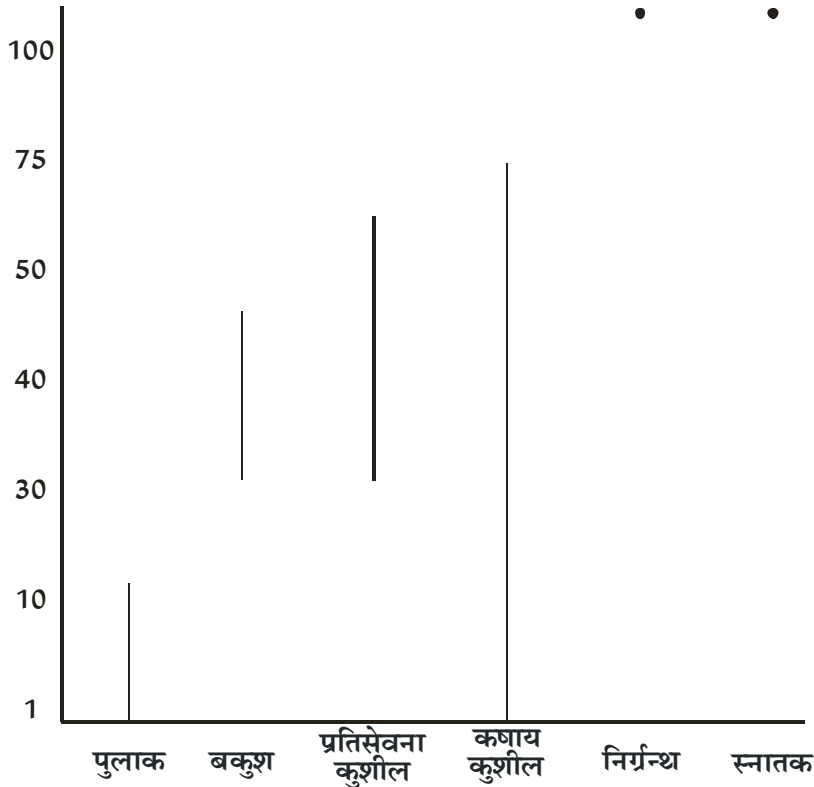
1. सबसे कम निर्ग्रन्थ और स्नातक के संयम-स्थान-एक
2. उससे पुलाक के संयम-स्थान- असंख्यातगुण।
3. उससे बकुश के संयम-स्थान- असंख्यातगुण।
4. उससे प्रतिसेवना के संयम-स्थान- असंख्यातगुण।
5. उससे कषाय कुशील के संयम-स्थान- असंख्यातगुण।

ज्ञातव्य-

संयम अर्थात् चारित्र, स्थान अर्थात् शुद्धि की तीव्रता-मन्दता, अर्थात् चारित्र मोहनीय (कषाय मोहनीय) कर्म के क्षयोपशम उपशम, क्षय की विचित्रता से बनने वाले स्थानों को 'संयम-स्थान' कहते हैं। ये संयम-स्थान असंख्य होते हैं। असंख्यात लोकों में जितने आकाश-प्रदेश होते हैं, उतने असंख्यात संयम-स्थान समझने चाहिए।

निर्ग्रन्थ और स्नातकों में चारित्र मोहनीय कर्म का लेश मात्र भी उदय नहीं होता है, अतः इनका संयम-स्थान एक समान, एक ही माना जाता है। पुलाकादि चार नियंटों में चारित्र मोहनीय कर्म के क्षयोपशम आदि की विविधता-विचित्रता होने के कारण उनके संयम-स्थान असंख्यात होते हैं।

असत् कल्पना से संयम स्थानों को निम्न ग्राफ से आसानी से समझा जा सकता है -



एक-एक संयम स्थान में अनन्त पर्यव होते हैं- यह ग्राफ अगले द्वार के स्वस्थान परस्थान समझने में भी सहयोगी है।

15. सन्निकर्ष (निकास) द्वार

पुलाकादि छहों नियंठा के चारित्र पर्याय अनन्त होते हैं।

1. पुलाक, पुलाक के साथ में तथा कषाय कुशील के साथ में आपस में छद्वाणवडिया (षट्स्थानपतित) है। पुलाक, बकुश से, प्रतिसेवना कुशील से, निर्ग्रन्थ और स्नातक से अनन्त गुण हीन है।

2. बकुश, पुलाक से अनन्तगुण अधिक है। बकुश, बकुश से, प्रतिसेवना कुशील से, कषाय कुशील से छद्वाणवडिया है। बकुश, निर्ग्रन्थ और स्नातक से अनन्तगुण हीन है।
3. प्रतिसेवना कुशील, पुलाक से अनन्तगुण अधिक है। प्रतिसेवना कुशील, प्रतिसेवना कुशील से, बकुश से और कषाय कुशील से छद्वाणवडिया है। प्रतिसेवना कुशील, निर्ग्रन्थ से और स्नातक से अनन्तगुणहीन है।
4. कषाय कुशील, पुलाक से, बकुश से, प्रतिसेवना कुशील से और कषाय कुशील से छद्वाणवडिया है। कषाय कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक से अनन्तगुण हीन है।
5. निर्ग्रन्थ और स्नातक आपस में तुल्य है। निर्ग्रन्थ और स्नातक, पुलाक से, बकुश से, प्रतिसेवना कुशील से और कषाय कुशील से अनन्त गुण अधिक है।

अल्पबहुत्व -

1. सबसे थोड़े पुलाक और कषाय कुशील के जघन्य चारित्र-पर्याय।
2. उससे पुलाक के उत्कृष्ट चारित्र-पर्याय अनन्तगुणा।
3. उससे बकुश और प्रतिसेवना कुशील के जघन्य चारित्र-पर्याय अनन्तगुणा, किन्तु बकुश-प्रतिसेवना के परस्पर तुल्य।
4. उससे बकुश के उत्कृष्ट चारित्र-पर्याय अनन्तगुणा।
5. उससे प्रतिसेवना कुशील के उत्कृष्ट चारित्र-पर्याय अनन्तगुणा।
6. उससे कषाय कुशील के उत्कृष्ट चारित्र-पर्याय अनन्तगुणा।
7. उससे निर्ग्रन्थ और स्नातक के चारित्र-पर्याय अनन्त गुणा, किन्तु निर्ग्रन्थ और स्नातक के परस्पर तुल्य।

ज्ञातव्य-

चारित्र की पर्यायों को निकर्ष कहते हैं। स्वजातीय, परजातीय के साथ संयोजन करना सन्निकर्ष कहलाता है। संयम-स्थान असंख्यात होते हैं, किन्तु पर्यायें अनन्त होती हैं। एक-एक संयम-स्थान में अनन्त पर्यायें होती हैं, असंख्यात संयम-स्थानों में भी अनन्त-अनन्त पर्यायें होती हैं, क्योंकि अनन्त के भी छोटे-बड़े की अपेक्षा से अनन्त भेद हो जाते हैं। संयम-स्थान असंख्यात लोकों में रहे हुए आकाश प्रदेशों के बराबर होते हैं, जबकि पर्यायें अनन्तानन्त होती हैं।

चारित्र अर्थात् सर्वविरति रूप परिणाम, उसके पर्याय अर्थात् तरतमता के आधार पर बने हुए सबसे छोटे भेदों को 'पर्याय' कहते हैं।

पुलाक की तथा कषाय कुशील की जघन्य चारित्र पर्याय अनन्त होते हुए भी सबसे कम होती हैं। वहाँ से जहाँ तक उन दोनों के अध्यवसाय समान होते हैं, वहाँ तक उनके चारित्र पर्याय भी समान होती हैं। बाद में पुलाक, कषाय कुशील की अपेक्षा हीन परिणाम वाला होने से आगे की चारित्र पर्यायों को प्राप्त नहीं कर पाता है, किन्तु वही रूक जाता है। इसके बाद असंख्यात स्थान तक आगे अकेला कषाय कुशील ही बढ़ता है।

कषाय कुशील विशुद्धि वाला होने से आगे तक बढ़ जाता है और बकुश, प्रतिसेवना कुशील और कषाय कुशील इन तीनों की चारित्र पर्यायें कुछ स्तर तक समान हो जाती हैं। कुछ आगे जाकर बकुश की चारित्र पर्यायें रूक जाती हैं। इसके बाद असंख्यात संयम-स्थानों के बराबर चारित्र पर्यायें प्रतिसेवना कुशील व कषाय कुशील की साथ-साथ रहती हैं। फिर प्रतिसेवना कुशील की चारित्र पर्यायें रूक जाती हैं। इसके बाद असंख्यात संयम स्थान तक के बराबर की चारित्र पर्यायें कषाय कुशील में रहती हैं, फिर कषाय कुशील की पर्यायें भी रूक जाती हैं। इसके बाद अनन्त चारित्र पर्याय को लांघकर निर्ग्रन्थ व स्नातक अपनी चारित्र पर्याय को प्राप्त करते हैं। निर्ग्रन्थ और स्नातक इन दोनों में एक समान चारित्र पर्यायें विद्यमान रहती हैं।

स्वस्थान- परस्थान सन्निकर्ष -

पुलाक आदि का पुलाक आदि स्व-स्व के साथ सन्निकर्ष-मिलान (तुलना करना) करने को स्वस्थान सन्निकर्ष कहते हैं। पुलाक आदि का, बकुश आदि पर के साथ सन्निकर्ष-मिलान करने को परस्थान सन्निकर्ष कहते हैं।

विशुद्ध संयम सम्बन्धी, विशुद्धतर पर्यायों की अपेक्षा, अविशुद्ध संयम-सम्बन्धी अविशुद्धतर चारित्र-पर्याय 'हीन' कहलाती हैं। शुद्ध पर्यायों की समानता के कारण चारित्र पर्याय परस्पर 'तुल्य' तथा विशुद्धतर पर्यायों से तुलना करने पर 'अधिक' चारित्र पर्याय कहलाती हैं।

एक पुलाक, दूसरे पुलाक के साथ सजातीय चारित्र पर्यायों से छद्वाणवडिया अर्थात् षट्स्थानपतित हो सकता है। हीन (कमी) की अपेक्षा से षट्स्थान इस प्रकार हैं- 1. अनन्त भाग हीन, 2. असंख्यात भाग हीन, 3. संख्यात भाग हीन, 4.

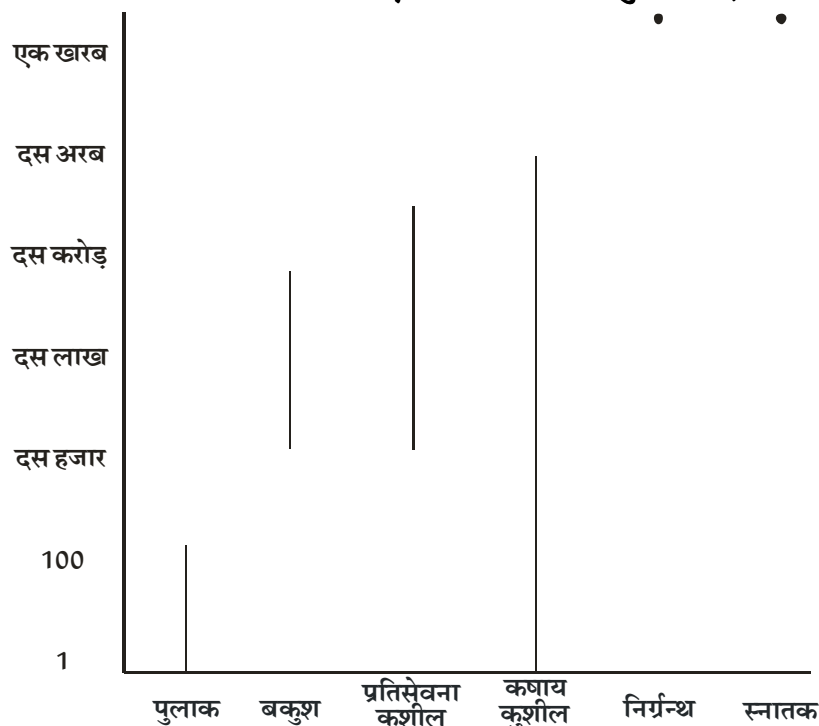
संख्यात गुण हीन, 5. असंख्यात गुण हीन, 6. अनन्त गुण हीन।

अधिक की अपेक्षा षट्स्थान इस प्रकार हैं- 1. अनन्त भाग अधिक, 2. असंख्यात भाग अधिक, 3. संख्यात भाग अधिक, 4. संख्यात गुण अधिक, 5. असंख्यात गुण अधिक, 6. अनन्त गुण अधिक।

दो चीजों (जीवों) की आपस में तुलना करने पर यदि उनमें अनन्तवें भाग का अन्तर हो तो पहला, असंख्यातवें भाग का अन्तर होने पर दूसरा, संख्यातवें भाग का (दुगुने से कम) अन्तर होने पर तीसरा, दुगुना या दुगुने से अधिक का अन्तर होने पर चौथा, असंख्यात गुणा अन्तर होने पर पाँचवा तथा अनन्त गुणा अन्तर होने पर छठा स्थान बनता है। ये छहों मिलकर षट्स्थान कहलाते हैं। इनमें होने वाली हानि-वृद्धि को षट्स्थान पतित (छट्टाणवडिया) कहते हैं।

यहाँ संयम-स्थान से तात्पर्य चारित्र मोहनीय कर्म के क्षयोपशम की विचित्रता तथा मोहोदय के अभाव रूप अवस्था से लिया गया है। जबकि पर्याय से तात्पर्य संयमी आत्मा की ज्ञान-दर्शन-चारित्रादि आत्मगुणों में रमणता रूप विशुद्धि से लिया गया है।

छहों नियंठों की चारित्र पर्याय तुलनात्मक स्थिति निम्न ग्राफ से आसानी से समझी जा सकती हैं। असत् कल्पना से यहाँ चारित्र की अनन्तानन्त पर्यायों को एक खरब मानकर प्रस्तुति की गई है।



16. योग द्वार

1. पुलाकादि पाँच नियंठा सयोगी होते हैं- योग पावे तीनों।
2. स्नातक सयोगी-अयोगी दोनों होते हैं। सयोगी हो तो योग पावे तीनों।

ज्ञातव्य-

तेरहवें गुणस्थान तक मन, वचन, काया की प्रवृत्ति रहने के कारण सयोगी माने जाते हैं। पुलाक आदि पाँच नियंठा 6 से 12 गुणस्थानवर्ती होने से सयोगी होते हैं। स्नातक 13वें, 14वें गुणस्थान वाले होते हैं। तेरहवें गुणस्थान में मन, वचन, काया की प्रवृत्ति रहती है, अतः वे सयोगी कहलाते हैं। चौदहवें गुणस्थान में योगों का अभाव होने के कारण तथा शैलेषी अवस्था होने के कारण वे अयोगी कहलाते हैं।

17. उपयोग द्वार

पुलाकादि सभी नियंठा साकार और अनाकार दोनों उपयोग वाले होते हैं।

ज्ञातव्य-

उपयोग जीव का लक्षण होने के कारण सभी जीवों में पाया जाता है। उपयोग के साकार-अनाकार की अपेक्षा से दो भेद हैं। साकार उपयोग अर्थात् ज्ञानोपयोग। अनाकार उपयोग अर्थात् दर्शनोपयोग। ज्ञानोपयोग को विशेष उपयोग तथा दर्शनोपयोग को सामान्य उपयोग भी कहते हैं। छहों नियंठे साकार-अनाकार दोनों उपयोग वाले होते हैं। जीव की

ज्ञान-दर्शनात्मक प्रवृत्ति को 'उपयोग' कहते हैं। प्रज्ञापना के 13वें तथा 18 वें पद की टीका के अनुसार छद्मस्थ जीवों का उपयोग अन्तर्मुहूर्त-अन्तर्मुहूर्त में तथा केवलियों का उपयोग 1-1 समय में परिवर्तित होता है, अतः दोनों उपयोग होते हैं।

18. कषाय द्वार

1. पुलाक, बकुश, प्रतिसेवना कुशील इन तीनों में कषाय पावे-संज्वलन चौक (क्रोध, मान, माया, लोभ)
2. कषाय कुशील में कषाय पावे- संज्वलन की 4, 3, 2, 1
3. निर्ग्रन्थ और स्नातक अकषायी होते हैं। निर्ग्रन्थ उपशान्त कषायी तथा क्षीण कषायी दोनों तरह के होते हैं, जबकि स्नातक क्षीण कषायी ही होते हैं।

ज्ञातव्य-

कर्मसिद्धान्त से यह स्पष्ट ही है कि एक समय में तो एक जीव के भी क्रोधादि चार में से एक कषाय का ही उदय रहता है। समुच्चय जीव में चारों का तथा एक ही जीव में बदल-बदल कर चारों का उदय हो सकता है। पहले से लेकर दसवें गुणस्थान तक के जीव सकषायी होते हैं। पुलाक, बकुश और प्रतिसेवना कुशील छठे-सातवें गुणस्थान वाले होने से सकषायी हैं। कषाय कुशील छठे से दसवें गुणस्थान वाले होते हैं। छठे से आठवें गुणस्थान तक तो संज्वलन की चारों कषायों का उदय रहता ही है। नवें गुणस्थान में आने पर जब संज्वलन क्रोध का उदय समाप्त हो जाता है, क्षय या उपशम हो जाता है तो संज्वलन मान, माया, लोभ इन तीनों का ही उदय रहता है। जब संज्वलन मान का भी उदय समाप्त हो जाता है, क्षय या उपशम हो जाता है, तब संज्वलन माया, लोभ इन दो कषायों का ही उदय रहता है। जब परिणामों की विशुद्धि से संज्वलन माया का भी उदय नहीं रहता, तब मात्र संज्वलन लोभ कषाय का ही उदय शेष रहता है। जब वही साधु विशुद्धि से नवें से दसवें गुणस्थान में आता है तब भी संज्वलन लोभ कषाय ही उदय में रहती है। अन्तर इतना है कि दसवें गुणस्थान में बादर संज्वलन लोभ का नहीं, अपितु सूक्ष्म संज्वलन लोभ कषाय का ही उदय रहता है।

निर्ग्रन्थ अकषायी होते हैं। उपशम श्रेणि वाले हो तो उपशान्त कषायी तथा क्षपक श्रेणि वाले हों तो क्षीण कषायी कहलाते हैं। स्नातक तो क्षपक श्रेणि वाले ही बनते हैं, अतः वे तो क्षीण कषायी ही होते हैं।

19. लेश्या द्वार

1. पुलाक, बकुश, प्रतिसेवना कुशील में लेश्या पावे तीन- तेजो, पद्म, शुक्ल लेश्या।
2. कषाय कुशील में लेश्या पावे- छहों।
3. निर्ग्रन्थ में लेश्या पावे एक-शुक्ल लेश्या।
4. स्नातक में लेश्या पावे एक- शुक्ल-(परम शुक्ल) लेश्या तथा अलेशी भी होते हैं।

ज्ञातव्य-

पहले से लेकर तेरहवें गुणस्थान तक के सभी जीवों में लेश्या पाई जाती है। पुलाक छठे गुणस्थानवर्ती होने पर भी, विशुद्ध प्रयोजन से व अन्य उपाय संभव न होने पर ही पुलाक लब्धि का प्रयोग करने के कारण उसमें तीन शुभ लेश्याएँ ही मानी जाती हैं। बकुश, प्रतिसेवना कुशील में यद्यपि पूर्वकृत दोष विद्यमान हैं, तथापि वर्तमान में शुद्ध संयम का पालन करने वाले होने से इनमें भी तीन शुभ लेश्याएँ मानी जाती हैं। शुभ लेश्याओं के होने के कारण ही ये प्रतिसेवी होते हुए भी संयम से नीचे नहीं गिरते हैं।

कषाय कुशील में छठे गुणस्थानवर्ती में छहों लेश्या, सातवें गुणस्थान वाले में तीन शुभ लेश्या, आठवें-नवें-दसवें गुणस्थान वाले में एक शुक्ल लेश्या होती है। कषाय कुशील में छठे गुणस्थान वालों में कृष्णादि तीन अशुभ लेश्याएँ मानने का कारण अनुशासन करना, संघ व्यवस्था, शासन रक्षा आदि के लिए कदाचित् किंचित् अशुभ परिणाम आ जाना है व दीर्घकालीन संयम-पर्याय के कारण से भी 6 लेश्या होती हैं। जो कृष्णादि अशुभ लेश्या आती भी हैं तो उनमें नीचे के अधिक अशुभ दर्जे नहीं आकर ऊपर के कम अशुभ दर्जे वाले स्थान आते हैं। एक-एक लेश्याओं के प्रत्येक गुणस्थानों में असंख्य-असंख्य भेद (दर्जे) हो सकते हैं। अतः कषाय कुशील में अशुभ लेश्याएँ भी मानी जाती हैं।

निर्ग्रन्थ और स्नातक में एक शुक्ल (परम शुक्ल) लेश्या होती है। आठवें से तेरहवें गुणस्थान तक एक मात्र शुक्ल (परम शुक्ल) लेश्या ही मिलती है। निर्ग्रन्थों का 11-12 गुणस्थान तथा स्नातकों का 13वाँ-14वाँ गुणस्थान होता है। 14वें गुणस्थान की अपेक्षा स्नातक अलेशी होते हैं।

20. परिणाम द्वार

1. पुलाकादि चार नियंत्रणों में परिणाम पावे तीनों- हीयमान, वर्धमान, अवस्थित।
 - हीयमान-वर्धमान की स्थिति जघन्य 1 समय की, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त।

- अवस्थित की जघन्य स्थिति 1 समय, उत्कृष्ट 7 समय।
2. निर्गन्ध में परिणाम पावे दो- वर्धमान और अवस्थित।
 - वर्धमान की स्थिति जघन्य-उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की।
 - अवस्थित की जघन्य 1 समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की।
3. स्नातक में परिणाम पावे दो- वर्धमान और अवस्थित।
 - वर्धमान की स्थिति जघन्य-उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की।
 - अवस्थित की जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट देशोन क्रोड पूर्व वर्ष की।

ज्ञातव्य-

प्रज्ञापना के तेरहवें पद में जीव के परिणाम दस प्रकार के बताये गये हैं, उनमें ज्ञान, दर्शन व चारित्र परिणाम भी हैं। यहाँ दसवें गुणस्थान तक प्रमुखतः चारित्र परिणामों से सम्बन्धित जीव परिणामों की चर्चा हुई है, आगे के गुणस्थानों में ज्ञान, कषाय, लेश्या आदि परिणाम भी सम्मिलित हैं। चारित्र के भावों को 'परिणाम' कहते हैं। चारित्र मोह कर्म के क्षय/क्षयोपशम से तथा चारित्र मोहनीय कर्म के उदय के प्रभाव से परिणामों में, संयम के भावों में, विशुद्धि में निरन्तर वृद्धि हो, उसे 'वर्धमान' परिणाम कहते हैं और संयम की विशुद्धि में निरन्तर कमी होती रहे, उसे 'हीयमान' परिणाम कहते हैं। संयम-शुद्धि स्थिर रहे, उसमें किसी प्रकार की घट-बढ़ न हो, उसे 'अवस्थित' परिणाम कहते हैं।

पुलाक में वर्धमान, हीयमान परिणामों की स्थिति जघन्य 1 समय की बतलायी है, वह काल करने की अपेक्षा से नहीं समझना, क्योंकि पुलाक-पुलाकपने में मरण को प्राप्त होता ही नहीं है। मरण के समय तो वह कषाय कुशीलादि रूप में परिणत हो जाता है। पुलाक के परिणाम जब वर्धमान हो, तब यदि एक समय बाद ही संज्वलन कषाय के उदय से बाधित हो जाय तो वर्धमान परिणाम की स्थिति जघन्य 1 समय की घटित होती है। उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त तक समझना चाहिए। कषायों के उदय से प्रभावित हो जाने के कारण परिणामों में परिवर्तन 1 समय बाद भी हो सकता है।

बकुश, प्रतिसेवना कुशील, कषाय कुशील में वर्धमान-हीयमान परिणामों की स्थिति जघन्य 1 समय मरण की अपेक्षा भी घटित हो सकती है, क्योंकि इनका मरण भी संभव है।

छठे व सातवें गुणस्थान में अवस्थित परिणामों की स्थिति जघन्य 1 समय तथा उत्कृष्ट 7 समय की होती है, इसीलिए पुलाकादि चार निघंटों में अवस्थित परिणाम की उत्कृष्ट स्थिति 7 समय बतलायी है।

निर्गन्ध में 11वें गुणस्थान वाले निर्गन्ध का मरण संभव है, अतः 11वें गुणस्थान के प्रथम समय में मरण हो जाने की अपेक्षा जघन्य 1 समय तथा मरण न होने पर उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त की होती है। 12वें गुणस्थानवर्ती क्षपक श्रेणि वाला निर्गन्ध मरण को प्राप्त नहीं होता, अतः जघन्य स्थिति 1 समय न होकर अन्तर्मुहूर्त की होती है, उत्कृष्ट स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त की होती है। 11वें गुणस्थान से जो नीचे गिरते हैं, वे हीयमान परिणाम के कारण से नहीं, न ही लोभ के उदय से वरन् स्थिति पूर्ण हो जाने के कारण से गिरते हैं।

स्नातक में 13वें गुणस्थान की अपेक्षा अवस्थित परिणामों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट देशोन क्रोड पूर्व वर्ष की समझनी चाहिए। केवलज्ञान उत्पन्न होने के बाद अन्तर्मुहूर्त तक अवस्थित परिणाम वाला होकर फिर शैलेशी अवस्था को स्वीकार करता है, इस अपेक्षा से जघन्य अन्तर्मुहूर्त का काल घटित होता है। अवस्थित परिणाम का उत्कृष्ट काल देशोन क्रोड पूर्व वर्ष का-पूर्वकोटि वर्ष की आयु वाले पुरुष को 9 वर्ष बीत जाने पर केवलज्ञान उत्पन्न हो तो नौ वर्ष न्यून पूर्वकोटि वर्ष पर्यन्त अवस्थित परिणाम वाला होकर शैलेशी अवस्था की प्राप्ति तक विचरता है, इस अपेक्षा से समझना चाहिए। 11वें गुणस्थान में एक मात्र अवस्थित परिणाम तथा बारहवें व चौदहवें गुणस्थान में एक मात्र वर्धमान परिणाम होते हैं। तेरहवें गुणस्थान में प्रवेश करते समय तथा योगों का निरोध करते समय अन्तर्मुहूर्त-अन्तर्मुहूर्त तक वर्धमान परिणाम तथा शेष समयों में अवस्थित परिणाम होते हैं।

श्रेणि के गुणस्थानों 8 से 10 तक में क्षपक श्रेणि में मात्र वर्धमान परिणाम ही होता है।

उपशम श्रेणि में चढ़ते समय 8 से 10वें गुणस्थान में वर्धमान व उतरते समय हीयमान परिणाम ही होता है। अवस्थित-6,7,11,13 गुणस्थान में, वर्धमान 6 से 10 तथा 12 से 14 गुणस्थान में होता है। हीयमान 6 से 10 गुणस्थान तक होता है।

नियंटों में गुणस्थानों की अपेक्षा परिणामों की तालिका

गुणस्थान	परिणाम
6,7	वर्धमान, हीयमान, अवस्थित तीनों ही
8,9,10	उपशमश्रेणि-क्षपकश्रेणि में चढ़ने की अपेक्षा-वर्धमान परिणाम
	उपशमश्रेणि में नीचे गिरने की अपेक्षा-हीयमान परिणाम
11	अवस्थित परिणाम
12	वर्धमान परिणाम
13	वर्धमान और अवस्थित परिणाम
14	वर्धमान परिणाम

निर्ग्रन्थ व स्नातक में संयम स्थान एक ही है तथा परस्पर में चारित्र के पर्यव भी तुल्य ही है, क्योंकि चारित्र मोह का उदय नहीं है। यहाँ बारहवें गुणस्थान में वर्धमान परिणाम- ज्ञान परिणाम, लेश्या, योग आदि से तथा योग निरोध व गति आदि बंधनों से छुटकारे के परिणाम चौदहवें गुणस्थान में होने से यहाँ परिणाम अत्यन्त व्यापक अर्थ में है, मात्र चारित्र परिणाम में ही नहीं।

परिणाम द्वार को निम्न तालिका से संक्षेप में इस प्रकार जाना जा सकता है-

संयत	वर्धमान	हीयमान	अवस्थित
पुलाक	✓	✓	✓
बकुश	✓	✓	✓
प्रतिसेवना कुशील	✓	✓	✓
कषाय कुशील	✓	✓	✓
निर्ग्रन्थ	✓	X	✓
स्नातक	✓	X	✓

21. बन्ध द्वार

1. पुलाक आयुष्य कर्म को छोड़कर सात कर्म बान्धता है।
2. बकुश, प्रतिसेवना कुशील 7 अथवा 8 कर्म बांधता है।
3. कषाय कुशील 7 अथवा 8 अथवा 6 कर्म बांधता है।
4. निर्ग्रन्थ एक (सात) वेदनीय कर्म बान्धता है।
5. स्नातक एक (सात) वेदनीय कर्म बान्धता है तथा अबन्धक भी होता है।

ज्ञातव्य-

पुलाक, पुलाक लब्धि के प्रभाव से आयुर्कर्म का बन्ध नहीं करता है, अतः जब तक वह पुलाकपने में रहता है, तब तक आयुर्कर्म को छोड़कर शेष सात कर्मों का बन्ध करता है। बकुश व प्रतिसेवना कुशील यदि आयु का बन्ध करे तो आठों कर्मों का तथा आयु का बन्ध नहीं करें तब सात कर्मों का बन्ध करते हैं।

कषाय कुशील छठे-सातवें गुणस्थान में जब आयु का बन्ध करे तो उस समय आठों कर्म बान्धते हैं। जब आयु कर्म नहीं बांधे तब सात कर्म बान्धते हैं। सातवें गुणस्थान से ऊपर आयु का बन्ध स्वाभाविक रूप से होता ही नहीं है, अतः आठवें-नवमें गुणस्थान में सात कर्मों का ही बन्ध करते हैं। दसवें गुणस्थान में बादर कषाय का अभाव हो जाने से मोहनीय कर्म भी नहीं बन्धता, अतः आयु और मोहनीय को छोड़कर शेष 6 कर्मों का बन्ध करते हैं।

निर्ग्रन्थ और स्नातक (11,12,13वें गुणस्थानवर्ती) एक सात वेदनीय कर्म ही बांधते हैं, क्योंकि वे वीतरागी होते हैं, अतः उनके मात्र ईर्यापथिक आश्रव होता है। स्नातक में जो 14वें गुणस्थान वाले होते हैं वे अयोगी हो जाने से उनके किसी भी कर्म का बन्ध नहीं होता है।

22. वेदन (उदय) द्वार

1. पुलाकादि चार नियंठा आठों कर्मों को वेदते (उदय) हैं।
2. निर्ग्रन्थ, मोहनीय को छोड़कर शेष सात कर्मों का वेदन करते हैं।
3. स्नातक चार अघाती कर्मों का ही वेदन करते हैं।

ज्ञातव्य-

पहले से लेकर दसवें गुणस्थान तक आठों ही कर्मों का उदय (वेदन) रहता है, इसीलिए पुलाक, बकुश, प्रतिसेवना कुशील और कषाय कुशील इन चारों नियंठों में आठों ही कर्मों का उदय बतलाया है। निर्ग्रन्थ में 11वें, 12वें गुणस्थान में मोहनीय कर्म को छोड़कर शेष सात कर्मों का उदय रहता है। स्नातक केवली होने से उनके चार घाती कर्म क्षय हो जाते हैं, इसीलिए उनके वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र इन चार अघाती कर्मों का ही उदय रहता है।

उदय दो प्रकार का होता है- 1. प्रदेशोदय, 2. विपाकोदय।

बिना फल दिये कर्म पुद्गलों का आत्मा से अलग हो जाना, अनुभूति में नहीं आना, प्रदेशोदय कहलाता है। फल देकर आत्मा से अलग होना (निर्जरा होना), अनुभूति में आना, विपाकोदय कहलाता है।

विपाकोदय में प्रदेशोदय की नियमा है, जबकि प्रदेशोदय में विपाकोदय की भजना है। यहाँ वेदन से तात्पर्य विपाकोदय से समझना चाहिए।

23. उदीरणा द्वार

1. पुलाक छः कर्म (आयु, वेदनीय को छोड़कर) की उदीरणा करता है।
2. बकुश, प्रतिसेवना कुशील 7, 8 अथवा 6 कर्म की उदीरणा करता है।
3. कषाय कुशील 7, 8, 6 अथवा 5 कर्म (आयु, वेदनीय, मोहनीय को छोड़कर) की उदीरणा करता है।
4. निर्ग्रन्थ 5 अथवा 2 (नाम, गोत्र) कर्म की उदीरणा करता है।
5. स्नातक 2 कर्मों की उदीरणा करता है तथा अनुदीरक भी होता है।

ज्ञातव्य-

उदयावलिका के बाहर स्थित कर्म पुद्गलों को प्रयत्न विशेष से नियत समय से पहले खींच कर उदयावलिका में लाना 'उदीरणा' कहलाती है। उदीरणा के लिए चार बातें होना अनिवार्य है- 1. कर्म-प्रकृति का विपाकोदय होना, 2. एक आवलिका से अधिक स्थिति सत्ता में होना, 3. योगों की प्रवृत्ति होना और 4. उदीरणा के योग्य परिणाम होना।

पहले से लेकर छठे गुणस्थान तक सात, आठ अथवा छह कर्मों की उदीरणा होती है। पुलाक, पुलाक लब्धि के प्रभाव से आयु और वेदनीय इन दो कर्मों की उदीरणा नहीं कर पाते हैं, अतः उनमें 6 कर्मों की ही उदीरणा होती है।

बकुश, प्रतिसेवना कुशील छठे गुणस्थान वालों की अपेक्षा से उनमें 7, 8 अथवा 6 कर्मों की उदीरणा बतलायी है। आयुकर्म की उदीरणा न होने पर सात कर्मों की तथा आयु और वेदनीय इन दोनों कर्मों की उदीरणा न होने पर 6 कर्मों की उदीरणा होती है। आठ में सभी कर्मों की उदीरणा मानी जाती है। सातवें गुणस्थान में तो 6 कर्मों की ही उदीरणा होती है, क्योंकि 7वें गुणस्थान में वेदनीय व आयु की उदीरणा के योग्य परिणाम न होने से इन दोनों कर्मों की उदीरणा नहीं होती। कषाय कुशील में छठे गुणस्थान वालों में भी बकुश, प्रतिसेवना कुशील के समान 7, 8 अथवा 6 कर्मों की उदीरणा होती है। सातवें-आठवें-नवें गुणस्थान वालों में आयु और वेदनीय को छोड़कर शेष 6 कर्मों की उदीरणा होती है। दसवें गुणस्थान में 6 तथा 5 कर्मों की उदीरणा होती है, क्योंकि क्षपक श्रेणि वाले के जब तक मोहनीय कर्म की स्थिति एक आवलिका से अधिक शेष बचती है, तब तक उसकी उदीरणा होती है। जब एक आवलिका अथवा उससे कम स्थिति शेष बचती है तब मोहनीय कर्म की उदीरणा रूक जाती है, अतः 5 कर्मों की उदीरणा ही होती है। यदि उपशम श्रेणि वाले दसवें गुणस्थान में होते हैं तो उनके पंचसंग्रह भाग-5 में दसवें गुणस्थान के अन्तिम समय तक मोहनीय कर्म की उदीरणा होना माना है।

निर्ग्रन्थ में 5 तथा 2 कर्मों की उदीरणा बतलायी है। इसका कारण यह है कि 12वें गुणस्थान में जब ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, अन्तराय इन तीन कर्मों की स्थिति 1 आवलिका ही शेष बचती है, तब इनकी उदीरणा रूक जाती है। इससे पहले पाँच कर्मों की उदीरणा होती है। उपशम श्रेणि वाले निर्ग्रन्थों में 5 कर्मों की तथा क्षपक श्रेणि वाले निर्ग्रन्थों में 5 तथा 2 कर्मों की उदीरणा समझनी चाहिए।

स्नातक में 13वें गुणस्थान में रहते नाम व गोत्र, इन दो कर्मों की उदीरणा होती है। 14वाँ गुणस्थान अयोगी होने से उसमें किसी भी कर्म की उदीरणा नहीं होती, अतः अनुदीरक कहा जाता है।

24. उपसम्पद्धान द्वार

1. पुलाक, पुलाकपने को छोड़ता हुआ दो स्थानों में जाता है- 1. कषाय कुशील और 2. असंयम।
2. बकुश, बकुशपने को छोड़ता हुआ चार स्थानों में जाता है- 1. प्रतिसेवना कुशील, 2. कषाय कुशील 3. असंयम और 4. संयमासंयम।
3. प्रतिसेवना कुशल, प्रतिसेवना कुशीलपने को छोड़ता हुआ चार स्थानों में जाता है- 1. बकुश, 2. कषाय कुशील 3. असंयम और 4. संयमासंयम।
4. कषाय कुशील, कषाय कुशीलपने को छोड़ता हुआ छह स्थानों में जाता है- 1. पुलाक, 2. बकुश, 3. प्रतिसेवना कुशील, 4. निर्ग्रन्थ 5. असंयम और 6. संयमासंयम।
5. निर्ग्रन्थ, निर्ग्रन्थपने को छोड़ता हुआ तीन स्थानों में जाता है- 1. कषाय कुशील, 2. स्नातक और 3. असंयम।
6. स्नातक मोक्ष में ही जाता है।

ज्ञातव्य-

संज्वलन कषायोदय की सीमा तक दोष लगने पर ही संयम रह सकता है। प्रत्याख्यानावरण कषाय की सीमा तक दोष लगने पर संयमासंयम तथा अप्रत्याख्यानावरण कषाय की सीमा तक दोष लगने पर असंयम आ जाता है। पुलाकादि निर्ग्रन्थ सीधे-सीधे कहाँ-कहाँ जाते हैं उसका इस द्वार में वर्णन किया गया है। पुलाक लब्धि वाला साधु पहले कषाय कुशील होता है। पुलाक लब्धि का प्रयोग करने के बाद यदि वह आलोचनादि करके आराधक बन जाता है तो कषाय कुशील में आ जाता है। यदि आलोचनादि नहीं करता है तो विराधक बनकर असंयम में चला जाता है।

बकुश साधु बकुशपने में लगे हुए दोषों का शुद्धिकरण कर लेता है तो वह कषाय कुशील बन जाता है। यदि आलोचनादि से शुद्धिकरण नहीं करता है तो अपने परिणामानुसार प्रतिसेवना कुशील, असंयम और संयमासंयम इन तीनों में से किसी में भी चला जाता है। प्रतिसेवना कुशील भी यदि आराधक बन जाये तो कषाय कुशील में चला जाता है अन्यथा शेष तीन स्थानों- बकुश, असंयम, संयमासंयम में से किसी में भी जा सकता है। प्रतिसेवना कुशील मूलगुण दोष की शुद्धि कर ले, किन्तु उत्तरगुण दोष की शुद्धि नहीं करें तो बकुश में जा सकता है।

कषाय कुशील साधु अप्रतिसेवी अर्थात् निर्दोष संयम का पालन करने वाला होता है। अतः निर्दोष संयम पालते-पालते परिणामों की विशेष शुद्धि के कारण उपशम/क्षपक श्रेणि करता हुआ वह निर्ग्रन्थ पद को प्राप्त कर लेता है। यदि पुलाक लब्धि का प्रयोग करने को तत्पर होता है तो वह पुलाकपने को प्राप्त कर लेता है। जब कषाय कुशील साधु पुलाकपने को प्राप्त करने वाले होते हैं तब अन्तर्मुहूर्त पहले परिणामों में मलिनता आ जाती है। पुलाक लब्धि अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त होती है, प्राप्ति के समय जघन्य पर्यव नहीं हो सकते, उत्कृष्ट या मध्यम हो सकते हैं फिर हीयमान भाव से गिरता हुआ जघन्य पर्यव पर पहुँचे, तब उसमें कषाय कुशील के जघन्य पर्यव संभावित हैं। शुद्धि के भाव से पुलाक में वर्धमान परिणाम आने पर कषाय कुशील में आने पर जघन्य पर्यव नहीं हो सकते। यदि कषाय कुशील साधु संक्लेश परिणाम आ जाने के कारण मूलगुण-उत्तरगुण के दोषों का सेवन कर लेता है तो प्रतिसेवना कुशील तथा उत्तर गुण के दोषों के सेवन से बकुश भी बन सकता है, असंयम व संयमासंयम में भी जा सकता है। काल करने पर भी सीधा असंयम में चला जाता है।

निर्ग्रन्थ, निर्ग्रन्थपने में आराधक ही होता है। 11वें गुणस्थानवर्ती उपशान्त कषायी निर्ग्रन्थ की उपशम की स्थिति पूर्ण हो जाने से यदि वह नीचे गिरता है तो कषाय कुशील बन जाता है। यदि 11वें गुणस्थान में रहते आयु पूर्ण जाने से मरण हो जाता है तो पूर्वबद्धायु के अनुसार पाँच अनुत्तर विमान में सम्यग्दृष्टि देव रूप में उत्पन्न होता है, अतः असंयम में जाना माना गया है। 12वें गुणस्थानवर्ती क्षीण कषाय निर्ग्रन्थ अन्तर्मुहूर्त में अवश्य ही केवली बनता है, अतः वह स्नातक पद को प्राप्त करता हुआ मोक्ष में चला जाता है। 13-14 गुणस्थानवर्ती स्नातक उसी भव में अवश्य ही मोक्ष में जाता है।

25. संज्ञा द्वार

1. पुलाक, निर्ग्रन्थ और स्नातक नोसंज्ञा वाले होते हैं।
2. बकुश, प्रतिसेवना कुशील, कषाय कुशील संज्ञा वाले भी तथा नो संज्ञा वाले भी होते हैं। यदि संज्ञा वाले होते हैं तो चारों संज्ञा (आहार, भय, मैथुन और परिग्रह संज्ञा) पाई जाती हैं।

ज्ञातव्य-

आहारादि की तीव्र अभिलाषा को अथवा आसक्ति-भाव को, संज्ञा कहते हैं। जो आहारादि का उपयोग करते हुए भी उनकी आसक्ति से रहित होते हैं, वे 'नो संज्ञा' वाले कहलाते हैं। पहले से लेकर छठे गुणस्थान तक के जीव संज्ञा वाले होते हैं। सातवें से लेकर चौदहवें गुणस्थान तक के अप्रमत्त अनगर संज्ञा रहित अर्थात् नो संज्ञा वाले होते हैं। छठे गुणस्थान में यद्यपि संज्ञा मानी जाती है, फिर भी इतना ध्यान रखना चाहिए कि छठे गुणस्थान में भी यदि साधु शुभ योगों

में प्रवृत्त है, आहारादि की आसक्ति से रहित है तो उस समय वह भी नो संज्ञा वाला ही होता है, अशुभयोगी बनते ही पुनः संज्ञा उत्पन्न हो जाती है।

पुलाक, पुलाक लब्धि के प्रभाव से नो संज्ञा वाला होता है। यद्यपि पुलाक में छठा गुणस्थान होता है, किन्तु ज्ञान प्रधान उपयोग वाला होने से, आहारादि की आसक्ति नहीं होने से उसे नो संज्ञा वाला अर्थात् संज्ञा रहित माना है। बकुश, प्रतिसेवना कुशील, कषाय कुशील ये तीनों छठे गुणस्थान में अशुभ योगों में प्रवृत्त हो, उस समय संज्ञा वाले तथा शुभयोगी होने पर अप्रमत्तता की ओर उन्मुख होने पर नो संज्ञा वाले होते हैं। सातवें से 10वें गुणस्थान वाले तो संज्ञा रहित ही होते हैं।

निर्ग्रन्थ और स्नातक (11 से 14 गुणस्थानवर्ती) अप्रमत्त होने से नो संज्ञा वाले ही होते हैं।

26. आहार द्वार

1. पुलाकादि पाँच नियंठा आहारक होते हैं।
2. स्नातक, आहारक-अनाहारक दोनों होते हैं।

ज्ञातव्य-

आहार मुख्य रूप से चार प्रकार का है-1. ओज आहार, 2. रोम आहार, 3. कवल आहार और 4. मनोभक्षी आहार। प्रज्ञापना सूत्र के अट्टाईसवें पद में 2-2 के रूप में भेद- 1. रोम आहार-24 दंडक, 2. कवल आहार- औदारिक के 5 दंडक। 1. ओज आहार- 24 ही दण्डकों में, 2. मनोभक्षी- देव के 13 दंडक में। नारकी में रोम व ओज, 13 प्रकार के देवता में ओज, रोम व मनोभक्षी और एकेन्द्रिय के पाँचों दण्डक में रोम व ओज आहार तथा विकलेन्द्रिय, तिर्यच पंचेन्द्रिय व मनुष्य में रोम, कवल व ओज आहार होता है। ओज आहार- उत्पत्ति के समय में ग्रहण होता है। रोम आहार- त्वचा में रहे हुए छिद्रों से ग्रहण होता है। कवल आहार- अशन, पान, खादिम, स्वादिम रूप से चार प्रकार का होता है। देवता मनोभिलषित वैक्रिय पुद्गलों को आहार रूप में ग्रहण करते हैं, उसे मनोभक्षी आहार कहते हैं। जो उक्त चारों में से किसी भी प्रकार का आहार ग्रहण करते हैं, वे आहारक कहलाते हैं तथा जो जब किसी भी प्रकार का आहार ग्रहण नहीं करते, तब वे अनाहारक कहलाते हैं।

जीव अनाहारक या तो अपान्तराल गति में (बाटे बहती अवस्था में पहले, दूसरे व चौथे गुणस्थान में) रहता है, अथवा केवली समुद्घात के तीसरे, चौथे, पाँचवें समय में अनाहारक रहता है अथवा चौदहवें गुणस्थान में अनाहारक रहता है। इनके अलावा शेष अवस्थाओं में संसारी जीव आहारक होता है।

पुलाक, बकुश, प्रतिसेवना कुशील, कषाय कुशील व निर्ग्रन्थ ये पाँचों नियंठा साधुओं में (6 से 12 गुणस्थान) होते हैं, अतः वे आहारक ही होते हैं। स्नातक में 13वें गुणस्थान में रहते जब वे केवली समुद्घात करते हैं, तब तीसरे-चौथे-पाँचवें समय में अनाहारक रहते हैं। शेष समयों में आहारक होते हैं। 14 वें गुणस्थान में अयोगी अवस्था, निष्कम्प दशा होने से वे अनाहारक ही होते हैं। इस प्रकार से स्नातक को आहारक तथा अनाहारक दोनों माना गया है।

27. भव द्वार

1. पुलाक और निर्ग्रन्थपना जघन्य एक भव में, उत्कृष्ट तीन भव में आता है।
2. बकुश, प्रतिसेवना कुशील और कषाय कुशीलपना जघन्य एक भव में उत्कृष्ट 8 भव में आता है।
3. स्नातकपना एक भव में ही आता है, क्योंकि स्नातक उसी भव में मोक्ष जाता है।

ज्ञातव्य-

आराधक-विराधक के भेद बिना यहाँ भव-भ्रमण में एक जीव द्वारा प्राप्त किये जाने वाले पुलाकादि निर्ग्रन्थों के भव बताये गये हैं। पुलाक, निर्ग्रन्थ के उत्कृष्ट तीन भव बतलाये हैं। आराधक होने पर बीच में कम से कम दो भव वैमानिक देवलोक के तो अवश्य होते हैं। वैमानिक देवलोक के अधिक भव भी बीच में हो सकते हैं। विराधक होने पर तो बीच में संख्यात-असंख्यात और अनन्त भव चारों गतियों के मिलाकर हो सकते हैं, किन्तु उन भवों का यहाँ कथन नहीं किया गया है।

निर्ग्रन्थपना उत्कृष्ट तीन भव में प्राप्त होना बतलाया है, निर्ग्रन्थपना 2 प्रकार से प्राप्त होता है- 1. मोह के सर्वथा उपशम से, 2. मोह के क्षय। मोह के सर्वथा उपशम से जीव को अधिकतम दो भव में तथा क्षय से 1 भव में। इससे यह सिद्ध होता है कि 11वाँ गुणस्थानवर्ती निर्ग्रन्थपना दो भवों में प्राप्त हो सकता है। 11वाँ गुणस्थान दो भव में प्राप्त हो जाने से यह भी सिद्ध होता है कि साधु उपशम श्रेणी दो भवों में कर सकते हैं। 12वाँ गुणस्थानवर्ती निर्ग्रन्थ क्षपक श्रेणि वाला साधु ही बनता है, वह तो उसी भव में स्नातक बनकर मोक्ष में चला जाता है, इसलिए 1 भव में ही प्राप्त होता है। इस प्रकार से अधिकतम 3 भवों में ही निर्ग्रन्थपना प्राप्त होता है।

इसी प्रकार बकुश, प्रतिसेवना कुशील, कषाय कुशील में जो आठ भव बताये हैं, वे आठों भव भी साधुपने के ही गिनना चाहिए। यहाँ भी आराधकपने में तो बीच में कम से कम 7 भव तो वैमानिक के होते ही हैं। विराधक होने पर तो चारों गति में संख्यात-असंख्यात और अनन्त भव तक भी हो सकते हैं, किन्तु उनका यहाँ उल्लेख नहीं लिया है। 8वें भव में वह साधु अवश्य मोक्ष में जाता है।

स्नातकपना 13वें-14वें गुणस्थान में होने से वह एक ही भव में प्राप्त होता है तथा वह स्नातक उसी भव में मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

28. आकर्ष द्वार

क्र.सं.	निर्ग्रन्थ	एक भव में		अनेक भवों में	
		जघन्य	उत्कृष्ट	जघन्य	उत्कृष्ट
1.	पुलाक	1	3	2	7
2.	बकुश, प्रतिसेवना कुशील व कषाय कुशील	1	पृथक्त्व 100	2	पृथक्त्व हजार
3.	निर्ग्रन्थ	1	2	2	5
4.	स्नातक	एक बार			

ज्ञातव्य-

यहाँ आकर्ष का अर्थ है- चारित्र की प्राप्ति। चारित्र एक भव, अनेक भव में जितनी बार प्राप्त हो सकता है, उसे आकर्ष कहते हैं। पुलाकपना एक भव में जघन्य 1 बार, उत्कृष्ट 3 बार प्राप्त हो सकता है। इससे यह फलित होता है कि पुलाक लब्धि का प्रयोग एक भव में उत्कृष्ट तीन बार हो सकता है। पुलाकपना अधिक से अधिक तीन भवों में प्राप्त होता है तथा अनेक भवों की अपेक्षा उत्कृष्ट 7 बार प्राप्त होता है। अर्थात् तीन भवों में अधिकतम सात बार हो सकता है। तीन, तीन, एक अथवा तीन, दो, दो अथवा दो, तीन, दो अथवा एक, तीन, तीन अथवा, तीन, एक, तीन इत्यादि विकल्पों से पुलाकपना एक जीव को तीन भवों में सात बार प्राप्त हो सकता है।

जघन्य 1 बार इसलिए कहा जाता है कि एक बार पुलाकपना प्राप्त हुआ, बाद में कषाय कुशील बनकर, निर्ग्रन्थ-स्नातक बनता हुआ मोक्ष में जा सकता है। बकुश, प्रतिसेवना कुशील, कषाय कुशीलपना एक भव में जघन्य 1 बार उत्कृष्ट पृथक्त्व सौ बार अर्थात् उत्कृष्ट 900 बार प्राप्त हो सकता है। अनेक भवों में पृथक्त्व हजार बार प्राप्त होता है। बकुश, प्रतिसेवना कुशील, कषाय कुशीलपना अधिकतम 8 भवों में ही प्राप्त होता है। अतः पृथक्त्व हजार से तात्पर्य $900 \times 8 = 7200$ बार समझना चाहिए। यहाँ विशेष यह समझना चाहिए कि परस्पर भेदों को प्राप्त करके भी यह आकर्ष घटित हो सकता है। जैसे- कषाय कुशील से पुलाकपना प्राप्त कर शुद्धि करके वापस कषाय कुशील में आकर पुनः पुलाकपना प्राप्त कर सकता है। ऐसे में पुलाक का आकर्ष दो बार माना जायेगा।

निर्ग्रन्थपना एक भव में जघन्य एक बार, उत्कृष्ट दो बार आता है तथा अनेक भवों की अपेक्षा से जघन्य 2 बार, उत्कृष्ट पाँच बार आता है। क्योंकि उपशम श्रेणि एक भव में दो बार हो सकती है, अतः ग्यारहवाँ गुणस्थानवर्ती निर्ग्रन्थपना एक भव में 2 बार समझना चाहिए। निर्ग्रन्थपना अधिकतम तीन भवों में आता है, वह भी उत्कृष्ट 5 बार ही आता है। इससे यह सिद्ध होता है कि उपशम श्रेणि दो भवों में ही होती है तथा अधिकतम चार बार ही होती है, तभी चार बार ग्यारहवाँ गुणस्थानवर्ती निर्ग्रन्थपना घटित होता है तथा तीसरे भव में जब भी क्षपक श्रेणि करता है, तब उसे 12वें गुणस्थानवर्ती निर्ग्रन्थपना एक बार ही आता है, इस प्रकार से 3 भवों में 5 बार निर्ग्रन्थपना आ सकता है।

आगमानुसार (भगवती शतक 9 उद्दे. 31) जिस भव में एक बार उपशम श्रेणि कर लेते हैं, उस भव में क्षपक श्रेणि नहीं कर सकते। कामग्रन्थिक मत से उसी भव में क्षपक श्रेणि करना भी माना जाता है। किन्तु जिन्होंने एक भव में दो बार उपशम श्रेणि कर ली है, वे उस भव में क्षपक श्रेणि नहीं कर सकते। यह बात आगम और कर्मग्रन्थादि व्याख्या साहित्य एक मत से स्वीकार करते हैं।

स्नातक तो उसी भव में सिद्ध हो जाते हैं, इसलिए उनके अनेक भव और आकर्ष नहीं होने के कारण उनका कथन नहीं किया गया है।

29. काल द्वार

क्र.सं.	निर्ग्रन्थ	एक जीव की अपेक्षा		अनेक जीवों की अपेक्षा	
		जघन्य	उत्कृष्ट	जघन्य	उत्कृष्ट
1.	पुलाक	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त	1 समय	अन्तर्मुहूर्त
2.	बकुश, प्रतिसेवना कुशील व कषाय कुशील	1 समय	देशोन क्रोड़ पूर्व वर्ष	सदाकाल शाश्वत	
3.	निर्ग्रन्थ	1 समय	अन्तर्मुहूर्त	1 समय	अन्तर्मुहूर्त
4.	स्नातक	अन्तर्मुहूर्त	देशोन क्रोड़ पूर्व वर्ष	सदाकाल शाश्वत	

ज्ञातव्य-

पुलाकपने को प्राप्त करने वाला साधु, जब तक पुलाक लब्धि का प्रयोग पूर्ण नहीं होता, अन्तर्मुहूर्त काल पूरा नहीं होता तब तक वह पुलाकपने से गिरता नहीं है, मरण को तो पुलाक वैसे ही प्राप्त नहीं होता, इसलिए एक जीव की अपेक्षा पुलाक की जघन्य-उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त की होती है।

अनेक जीवों की अपेक्षा पुलाक की जघन्य स्थिति 1 समय की बतलाई, उसे इस प्रकार समझ सकते हैं कि एक जीव अपने पुलाकपने में अन्तर्मुहूर्त के अन्तिम समय होता है, उसी समय दूसरा जीव (साधु) पुलाकपने को प्राप्त कर लेता है, तब दोनों पुलाक का सद्भाव एक समय में होता है, इसलिए जघन्य काल एक समय घटित हो जाता है। उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त इसलिए कि पुलाक एक समय में पृथक्त्व हजार तक हो सकते हैं। बहुत होते हैं तब भी उनका काल अन्तर्मुहूर्त ही होता है। अनेक पुलाकों की स्थिति का अन्तर्मुहूर्त बड़ा होता है।

बकुश, प्रतिसेवना कुशील, कषाय कुशील की जघन्य स्थिति एक जीव की अपेक्षा जघन्य 1 समय बतलाई है। अर्थात् बकुशादि पर्याय को प्राप्त करने के पहले ही समय में आयु पूर्ण हो जाय, मृत्यु हो जाय तो जघन्य स्थिति 1 समय की घटित होती है। इसमें भी इतना अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि प्रथम बार कषाय कुशील बनने पर अन्तर्मुहूर्त तो उसे उसी चारित्र पर्याय में रहना ही पड़ता है, अन्तर्मुहूर्त के बाद ही वह बकुश, प्रतिसेवनादि को प्राप्त कर सकता है। बकुश, प्रतिसेवना कुशील बनते ही प्रथम समय में मरण को प्राप्त हो सकता है। ऐसा नहीं हो सकता कि मनुष्य भव में प्रथम बार कषाय कुशील बने और एक समय में ही मरण हो जाय, क्योंकि भगवती शतक 12 उद्देशक 9 में धर्मदेव (साधु) की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त बतलाई है। उसी भव में दूसरी-तीसरी बार कषाय कुशीलपना प्राप्त हो और प्राप्त होने के प्रथम समय में ही मरण हो जाय तो कषाय कुशील की स्थिति जघन्य 1 समय (संचिद्रुण काल) की घटित हो जाती है।

एक क्रोड़ पूर्व वर्ष की आयु वाला कर्मभूमिज सन्नी मनुष्य यदि नौ वर्ष की उम्र में संयम ग्रहण कर ले तो उसकी अपेक्षा से बकुश, प्रतिसेवना व कषाय कुशील की उत्कृष्ट स्थिति देशोन क्रोड़ पूर्व वर्ष की होती है।

निर्ग्रन्थ की जघन्य स्थिति 1 समय की मानी है अर्थात् ग्यारहवें गुणस्थान में प्रवेश करते ही प्रथम समय में मृत्यु को प्राप्त हो जाय तो निर्ग्रन्थ की जघन्य स्थिति 1 समय की होती है। उत्कृष्ट काल ग्यारहवें-बारहवें दोनों गुणस्थानों का, अन्तर्मुहूर्त ही होता है, इसलिए उत्कृष्ट स्थिति निर्ग्रन्थ की अन्तर्मुहूर्त की बतलाई है।

स्नातक में- केवलज्ञान प्राप्त होने के अन्तर्मुहूर्त बाद जीव मोक्ष में जा सकता है, इसलिए जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की होती है। उत्कृष्ट स्थिति देशोन क्रोड़ पूर्व वर्ष की होती है, क्योंकि एक क्रोड़ पूर्व वर्ष की आयु वाले मनुष्य को 9 वर्ष की उम्र में केवलज्ञान प्राप्त हो जाय तो वह देशोन क्रोड़ पूर्व वर्ष 13वें गुणस्थान में स्नातक पर्याय में रह सकता है, उसके बाद वह मोक्ष में जाता है।

अनेक जीव की अपेक्षा बकुश, प्रतिसेवना कुशील व कषाय कुशील शाश्वत माने गये हैं क्योंकि बकुश, प्रतिसेवना कुशील पृथक्त्व सौ करोड़ तथा कषाय कुशील पृथक्त्व हजार करोड़ महाविदेह क्षेत्रादि में सदाकाल मिलते हैं।

स्नातक भी महाविदेहादि क्षेत्रों में पृथक्त्व करोड़ सदाकाल मिलते हैं, इसलिए अनेक जीव की अपेक्षा ये भी शाश्वत माने गये हैं।

30. अन्तर द्वार

क्र. सं.	निर्ग्रन्थ	एक जीव की अपेक्षा		अनेक जीवों की अपेक्षा	
		जघन्य	उत्कृष्ट	जघन्य	उत्कृष्ट
1.	पुलाक	अन्तर्मुहूर्त	देशोन अर्ध पुद्गल परावर्तन काल	1 समय	संख्यात वर्ष
2.	बकुश, प्रतिसेवना कुशील व कषाय कुशील	अन्तर्मुहूर्त	देशोन अर्ध पुद्गल परावर्तन काल	अन्तर नहीं	
3.	निर्ग्रन्थ	अन्तर्मुहूर्त	देशोन अर्ध पुद्गल परावर्तन काल	1 समय	6 मास
4.	स्नातक		अन्तर नहीं	अन्तर नहीं	

ज्ञातव्य-

एक पर्याय (अवस्था) को प्राप्त करने के बाद उसका त्याग करके पुनः उसी पर्याय को जितने समय में प्राप्त कर लेते हैं, उसे 'अन्तर' कहते हैं। अर्थात् उसी पर्याय को दुबारा प्राप्त करने में जितना काल लगता है, वह 'अन्तर' कहलाता है।

पुलाक, बकुश, प्रतिसेवना कुशील, कषाय कुशील और निर्ग्रन्थ इन पाँचों नियंत्रों का एक जीव की अपेक्षा से जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त का तथा उत्कृष्ट देशोन अर्धपुद्गल परावर्तन काल का बतलाया है। अर्थात् कम से कम अन्तर्मुहूर्त के बाद पुनः उसी पर्याय को प्राप्त किया जा सकता है। उत्कृष्ट अन्तर इस प्रकार समझना चाहिए कि जैसे- कोई भवी जीव शुक्लपक्षी बनने के अन्तर्मुहूर्तादि कुछ समयों के पश्चात् ही मनुष्य भव में समकित प्राप्त कर ले, संयम अंगीकार कर ले, पूर्वो का ज्ञान अर्जित कर पुलाकादि पाँच नियंत्रों को प्राप्त कर लें, किन्तु उसका देशोन अर्ध पुद्गल परावर्तन संसार काल बाकी होने से वह स्नातक नहीं बन पाता, मोक्ष में नहीं जा पाता।

संसार परिभ्रमण काल जिसका जितना होता है, उसे उतने ही समय में पूरा करना पड़ता है। उसमें कमी नहीं हो सकती। परित्त संसारी बनने पर जन्म-मरण के भव सीमित हो सकते हैं, किन्तु संसार परिभ्रमण काल में कोई कमी नहीं हो पाती है। इसलिए उसे चारित्र पर्याय से नीचे गिरकर चतुर्गति रूप संसार में जन्म-मरण करना ही पड़ता है। देशोन अर्धपुद्गल परावर्तन काल व्यतीत करने हेतु उसे अनन्तकाय रूप वनस्पति में अनन्त जन्म-मरण करने ही पड़ते हैं, फिर वहाँ से निकलकर मनुष्य भव में आकर पुनः पुलाकादि पाँच नियंत्रों को प्राप्त कर सकते हैं, इसी अपेक्षा से उत्कृष्ट अन्तर घटित होता है।

देशोन अर्धपुद्गल परावर्तन में अनन्त उत्सर्पिणी, अनन्त अवसर्पिणी काल व्यतीत हो जाता है। यह देशोन अर्ध पुद्गल परावर्तन भी सूक्ष्म क्षेत्र पुद्गल परावर्तन वाला समझना चाहिए।

सूक्ष्म क्षेत्र पुद्गल परावर्तन-लोक के सभी आकाश प्रदेशों में क्रम से जन्म-मरण करने पर होता है। जैसे- इस जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत के सम भू भाग के बीच में 8 रुचक प्रदेश हैं, जहाँ से दसों दिशाएँ निकलती हैं। कोई जीव पहली बार पहले रुचक प्रदेश पर मरे, फिर दूसरी बार उसके पास के आकाश प्रदेश पर मरे (आगे-पीछे मरे वह गिनती में नहीं लेना है), इस तरह सम्पूर्ण लोक के आकाश प्रदेशों को क्रम से पूरा करे, उसे क्षेत्र से सूक्ष्म पुद्गल परावर्तन काल कहते हैं। (औदारिक आदि समान जाति के पुद्गलों के समूह को वर्गणा कहते हैं।)

निर्ग्रन्थ में जो अन्तर बतलाया गया है वह उपशान्त कषाय छद्मस्थ वीतरागी अर्थात् 11वें गुणस्थान वाले, उपशम श्रेणि वाले की अपेक्षा से समझना चाहिए। एक भव में दो बार उपशम श्रेणि कर सकते हैं तथा वह भी कम से कम अन्तर्मुहूर्त के बाद ही दुबारा उसी भव में उपशम श्रेणि कर सकते हैं, इसलिए निर्ग्रन्थ का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त का होता है। उत्कृष्ट अन्तर देशोन अर्ध पुद्गल परावर्तन होने का कारण पहले बतला ही चुके हैं।

अनेक जीवों की अपेक्षा

पुलाक का अनेक जीवों की अपेक्षा अन्तर जघन्य एक समय, उत्कृष्ट संख्यात वर्षों का बतलाया है, इससे स्पष्ट होता है कि एक के पुलाकपना प्राप्त करने के बाद अगले ही समय में दूसरा पुलाकपने को प्राप्त कर सकता है। यदि विशेष अन्तर पड़े तो उत्कृष्ट संख्यात वर्षों के बाद तो कोई न कोई साधु पुलाकपने को प्राप्त कर ही लेता है।

बकुश, प्रतिसेवना कुशील व कषाय कुशील में अनेक जीवों की अपेक्षा अन्तर नहीं पड़ता, ये महाविदेह क्षेत्रादि में

सदाकाल शाश्वत मिल ही जाते हैं। कषाय कुशील का शाश्वतपना छोटे-सातवें गुणस्थान की अपेक्षा से समझना चाहिए। आठवें, नवें, दसवें गुणस्थान वालों की अपेक्षा नहीं, क्योंकि आठवें से लेकर दसवाँ गुणस्थान शाश्वत नहीं मिलता है। इनकी अपेक्षा अन्तर पड़ सकता है, उसमें भी उपशम श्रेणि की अपेक्षा पृथक्त्व वर्ष का तथा क्षपक श्रेणि की अपेक्षा 6 मास का उत्कृष्ट अन्तर हो सकता है।

निर्ग्रन्थ का अन्तर अनेक जीवों की अपेक्षा जघन्य एक समय, उत्कृष्ट छह मास का बतलाया है। छः मास का उत्कृष्ट अन्तर क्षपक श्रेणि वाले 12वें गुणस्थानवर्ती निर्ग्रन्थ की अपेक्षा समझना चाहिए, वरना तो 11वें गुणस्थानवर्ती उपशम श्रेणि वाले निर्ग्रन्थ का उत्कृष्ट अन्तर तो पृथक्त्व वर्ष (9 वर्ष) का होता है।

स्नातक में 13वें गुणस्थानवर्ती स्नातक पृथक्त्व करोड़ महाविदेहादि क्षेत्रों में सदाकाल मिलने के कारण, उनका अन्तर नहीं बतलाया है। यदि 14वें गुणस्थानवर्ती स्नातक की अपेक्षा से विचार करें तो क्षपक श्रेणि वाले निर्ग्रन्थों के समान इनका भी उत्कृष्ट अन्तर 6 मास का हो सकता है।

31. समुद्घात द्वार

1. पुलाक में समुद्घात पावे तीन- वेदनीय, कषाय और मारणान्तिक।
2. बकुश, प्रतिसेवना कुशील में समुद्घात पावे पाँच- वेदनीय, कषाय, मारणान्तिक, वैक्रिय और तैजस।
3. कषाय कुशील में समुद्घात पावे छह- उपर्युक्त पाँच और छठा आहारक।
4. निर्ग्रन्थ में समुद्घात नहीं होते हैं।
5. स्नातक में समुद्घात पावे एक- केवली समुद्घात।

ज्ञातव्य-

सम् + उद् + घात इन तीनों से मिलकर समुद्घात शब्द बनता है। एकीभाव पूर्वक प्रबलता से कर्मों का घात करना, 'समुद्घात' कहलाता है। अथवा मूल शरीर को छोड़े बिना आत्म-प्रदेशों को बाहर निकाल कर तत्सम्बन्धी कर्मों की विशेष निर्जरा करना 'समुद्घात' कहलाता है।

वेदनीय समुद्घात में असाता वेदनीय कर्म की, कषाय समुद्घात में कषाय मोहनीय कर्म की, मारणान्तिक समुद्घात में आयुष्य कर्म की, वैक्रिय समुद्घात में वैक्रिय शरीर नाम कर्म की, तैजस समुद्घात में तैजस शरीर नाम कर्म की, आहारक समुद्घात में आहारक शरीर नाम कर्म की तथा केवली समुद्घात में वेदनीय, नाम और गोत्र कर्म के पूर्वबद्ध दलिकों की कारण विशेष से निर्जरा की जाती है।

वेदनीय से लेकर आहारक तक की छहों समुद्घात प्रमादी जीवों में अर्थात् पहले से छोटे गुणस्थान तक हो सकती है। केवली समुद्घात, सयोगी केवली भगवन्तों में ही हो सकती है, अन्यत्र नहीं।

पुलाक साधु में वेदनीय, कषाय और मारणान्तिक ये तीन समुद्घात मानी हैं। असाता वेदनीय में तथा संज्वलन क्रोधादि कषायों में प्रबलतापूर्वक एकीभाव होने से क्रमशः वेदनीय समुद्घात और कषाय समुद्घात पुलाक में हो सकती है। मारणान्तिक समुद्घात आगामी भव की आयु बन्ध कर चुके जीवों के ही होती है। वह भी वर्तमान आयु के अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर ही होती है। एक भव में अधिकतम दो बार हो सकती है। पुलाक अवस्था में यद्यपि मरण नहीं होता, लेकिन मारणान्तिक समुद्घात हो सकती है क्योंकि मारणान्तिक समुद्घात से निवृत्त होने के बाद पुलाक साधु अपनी शेष रही अन्तर्मुहूर्त की स्थिति में कषाय कुशीलादि अवस्था के परिणामों को प्राप्त कर लेता है और उसी कषाय कुशीलादि के सद्भाव में मरण को प्राप्त हो जाता है।

बकुश, प्रतिसेवना कुशील में वेदनीय, कषाय, मारणान्तिक के साथ वैक्रिय और तैजस समुद्घात भी मिल सकती है। इससे स्पष्ट होता है कि बकुश व प्रतिसेवना कुशील वाले वैक्रिय लब्धि का, तेजो लब्धि का प्रयोग कर सकते हैं, किन्तु उनमें आहारक लब्धि होती ही नहीं, क्योंकि उन्हें 14 पूर्वों का ज्ञान नहीं होता है।

कषाय कुशील साधु में केवली समुद्घात को छोड़कर छहों समुद्घात हो सकती हैं। कषाय कुशील आराधक होता है तथा मूलगुण-उत्तरगुण में दोष नहीं लगाता है। आहारक लब्धि का प्रयोग करते आहारक समुद्घात करते हुए भी उसे अप्रतिसेवी (निर्दोष) माना जाता है।

निर्ग्रन्थ में 11वाँ, 12वाँ गुणस्थान होता है, पूर्ण अप्रमत्तता होती है, इसलिए उनमें एक भी समुद्घात नहीं होती है। अर्थात् सातवें से लेकर बारहवें गुणस्थानवर्ती साधु-साधिवियों में कोई भी समुद्घात नहीं होती। इतना अवश्य है कि छोटे गुणस्थान में मारणान्तिक समुद्घात पूर्ण किया हुआ साधु निर्ग्रन्थपने में (ग्यारहवें गुणस्थान में) आकर मरण को प्राप्त हो सकता है।

स्नातकों में 13वें गुणस्थानवर्ती सयोगी केवलियों में किसी-किसी में केवली समुद्घात हो सकती है। सामान्य केवलियों में तथा तीर्थकरों में दोनों में ही केवली समुद्घात हो सकती है। आवश्यक चूर्णि के उल्लेखानुसार किसको होती है-

- जिन केवलियों की केवलज्ञान प्राप्ति के समय 6 माह अथवा उससे कम आयु शेष रहे, तो वे केवली समुद्घात अवश्य करते हैं।
- जिन केवलियों की केवलज्ञान प्राप्ति के समय 6 माह से अधिक आयु शेष रहे तो उनमें कोई-कोई केवली ही केवली समुद्घात करते हैं। अर्थात् जिनके आयुकर्म के दलिकों की अपेक्षा वेदनीय, नाम व गोत्र कर्म के दलिक अधिक हों तो उनको बराबर करने के लिए केवली समुद्घात करते हैं।

कब होती है- 13वें गुणस्थान के अन्तिम अन्तर्मुहूर्त में होती है। केवली समुद्घात होने के अन्तर्मुहूर्त बाद वह जीव योगों का निरोध करता है तथा अयोगी केवली बनकर चार अघाती कर्मों को क्षय करके सिद्ध-बुद्ध और मुक्त हो जाता है।

32. क्षेत्र द्वार

- पुलाकादि पाँच नियंठा, लोक के असंख्यातवें भाग में होते हैं।
- स्नातक लोक के असंख्यातवें भाग में, अनेक असंख्याता भागों में तथा सम्पूर्ण लोक में भी होता है।

ज्ञातव्य-

पुलाक, बकुश, प्रतिसेवना कुशील, कषाय कुशील और निर्ग्रन्थ ये पाँचों अधिकांशतः 15 कर्मभूमि क्षेत्रों में होते हैं, क्वचित्, कदाचित् संहरण व लब्धि आदि की अपेक्षा A. अकर्मभूमि क्षेत्रों में होते हैं, B. अढाई द्वीप के बाहर होते हैं, C. मेरुपर्वत के पण्डक वनादि में होते हैं। इन सभी क्षेत्रों को मिला ले तो भी सम्पूर्ण 14 रज्जु लोक की अपेक्षा ये क्षेत्र लोक का असंख्यातवाँ भाग ही होता है, इसलिए इनका क्षेत्र लोक का असंख्यातवाँ भाग बतलाया गया है। मारणान्तिक समुद्घात करने की अपेक्षा भी अवगाहना लोक के असंख्यातवें भाग की ही होती है।

स्नातक का क्षेत्र लोक के असंख्यातवें भाग में जो बतलाया है, वह 13वें गुणस्थानवर्ती सयोगी केवली के सामान्य अवस्था में रहने पर (केवली समुद्घात नहीं करने पर) बतलाया गया है, क्योंकि केवली भी सामान्यतः उपर्युक्त क्षेत्रों में ही मिलते हैं। जब केवली केवली समुद्घात करते हैं तब दण्ड और कपाट अवस्था में भी लोक के असंख्यातवें भाग में रहते हैं।

जब वे मन्थान अवस्था में रहते हैं तब उनके आत्म-प्रदेश लोक के बहुत असंख्यात भागों में फैल जाते हैं, उस समय लोक का बहुत भाग व्याप्त कर लेते हैं, थोड़ा भाग ही बाकी रहता है, इसलिए उनका क्षेत्र अनेक असंख्यात भाग हो जाता है। जब वे केवली समुद्घात के चौथे समय में अपने आत्म प्रदेशों को सम्पूर्ण लोक में फैला देते हैं, तब उनका क्षेत्र सम्पूर्ण लोकव्यापी हो जाता है।

अर्थात् केवली समुद्घात के पहले, दूसरे, सातवें तथा आठवें, इन चार समयों में लोक के असंख्यातवें भाग का क्षेत्र होता है। तीसरे तथा पाँचवें समय में (मन्थानाकार) लोक के बहुत असंख्याता भाग का तथा चौथे समय में सम्पूर्ण लोक व्यापी क्षेत्र स्नातकों का हो जाता है।

14वें गुणस्थानवर्ती स्नातकों का क्षेत्र तो लोक का असंख्यातवाँ भाग ही होता है, क्योंकि अढाई द्वीप से ही सिद्ध बनते हैं। अढाई द्वीप का क्षेत्र, लोक का असंख्यातवाँ भाग ही होता है।

यदि संहरण किये हुए साधुओं में से कोई अढाईद्वीप के बाहर रहकर केवली (स्नातक) बन भी गये तो उनका वहाँ से मोक्ष नहीं हो सकता। उन्हें कोई न कोई देवतादि अढाईद्वीप में वापस लाता ही है, उसी के बाद में वे सयोगी केवली योगों का निरोध कर, अयोगी केवली बनकर मोक्ष पद को प्राप्त करते हैं, अतः उनका क्षेत्र लोक का असंख्यातवाँ भाग ही हो पाता है।

33. स्पर्शना द्वार

- पुलाकादि पाँच नियंठा लोक के असंख्यातवें भाग को स्पर्शते हैं।
- स्नातक लोक के असंख्यातवें भाग को, लोक के असंख्याता भागों को तथा सम्पूर्ण लोक को भी स्पर्शते हैं।

ज्ञातव्य-

सामान्य रूप से क्षेत्र द्वार व स्पर्शन द्वार एक समान बतलाया गया है, किन्तु फिर भी दोनों द्वार अलग-अलग बतलाये हैं, तो इनमें कुछ तो अन्तर होना ही चाहिए। उस अन्तर को इस प्रकार समझ सकते हैं-

जितने आकाश प्रदेशों को अवगाहित करके आत्म-प्रदेश रहे हैं, उतने क्षेत्र को 'अवगाहना' कहते हैं तथा अवगाहित क्षेत्र के साथ उसके पार्श्ववर्ती (आजु-बाजु के) प्रदेशों को भी गिनने से जो क्षेत्र बनता है, उसे 'स्पर्शना द्वार' कहते हैं। अवगाहना में लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई को आधार माना जाता है, जबकि स्पर्शना में लम्बाई, चौड़ाई तथा ऊँचाई के साथ आजु-बाजु के स्पर्श हुए आकाश प्रदेशों को भी गिना जाता है।

पुलाक आदि पाँचों नियंटों का तथा स्नातक का स्पर्शना द्वार का स्पष्टीकरण क्षेत्र द्वार में दिये गये ज्ञातव्य के समान ही समझना चाहिए। यहाँ लोक की अपेक्षा पृच्छा होने से केवली समुद्घात में स्नातक की सर्व लोक की स्पर्शना कह दी गई, जबकि केवली समुद्घात के चौथे समय में सर्व लोक के साथ अलोक के असंख्यात आकाश प्रदेशों की स्पर्शना भी होती है।

34. भाव द्वार

1. पुलाकादि चारों नियंटे क्षयोपशम भाव में होते हैं।
2. निर्ग्रन्थ औपशमिक तथा क्षायिक भाव में होते हैं।
3. स्नातक क्षायिक भाव में होते हैं।

ज्ञातव्य-

यहाँ आगमकारों के मतानुसार संयम (चारित्र) पर्याय को धारण किये हुए नियंटों का प्रसंग होने से चारित्र मोहनीय सम्बन्धी भावों की अपेक्षा से ही वर्णन किया गया है। दर्शन मोहनीय के क्षय या उपशम की अपेक्षा कथन नहीं है। औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक और पारिणामिक इन पाँच भावों में से प्रारंभ के तीन भावों का सीधा सम्बन्ध चारित्र पर्याय से है। औदयिक तथा पारिणामिक भाव तो सभी संसारी जीवों में मिलते ही हैं, किन्तु यहाँ उनका कथन नहीं किया गया है। दर्शन मोहनीय के क्षय या उपशम की अपेक्षा कथन नहीं किया गया किन्तु चारित्र मोहनीय की अपेक्षा ही इस भाव द्वार में वर्णन हुआ है।

पुलाक, बकुश, प्रतिसेवना कुशील और कषाय कुशील इन चारों में उपशम, क्षायिक व क्षयोपशम इन तीन भावों में से एक-क्षयोपशम भाव ही मिलता है। क्योंकि छठे से लेकर दसवें गुणस्थान तक चारित्र मोहनीय की संज्वलन कषाय का क्षयोपशम (मंद विपाकोदय) बना ही रहता है तथा ये चारों नियंटे इन गुणस्थानों में ही मिलते हैं।

चारित्र मोहनीय कर्म का पूर्ण उपशम 11वें गुणस्थान में होता है तथा चारित्र मोहनीय का क्षय दसवें गुणस्थान के अन्तिम समय में होता है, तब अगले समय में क्षीण मोह नामक बारहवाँ गुणस्थान प्राप्त होता है, इसलिए उपशम भाव 11वें गुणस्थानवर्ती निर्ग्रन्थ में तथा क्षायिक भाव 12वें गुणस्थानवर्ती निर्ग्रन्थ में माना जाता है।

स्नातक 13वें, 14वें गुणस्थानवर्ती होते हैं, उनमें तीन भावों में से एक क्षायिक भाव ही होता है। यहाँ चारित्र मोह के क्षय की अपेक्षा ही विचारणा हुई है, यद्यपि स्नातक में चारों घातियां कर्म क्षय होने वाला क्षायिक भाव भी होता है।

35. परिमाण द्वार

प्रतिपद्यमान (वर्तमान में उस अवस्था को प्राप्त करने वाले) की अपेक्षा से -

1. पुलाक, बकुश, प्रतिसेवना कुशील ये तीनों कदाचित् होते हैं, कदाचित् नहीं होते हैं। यदि होते हैं तो जघन्य 1,2,3 उत्कृष्ट पृथक्त्व सौ होते हैं।
2. कषाय कुशील कदाचित् होते हैं, कदाचित् नहीं होते हैं। यदि होते हैं तो जघन्य 1,2,3 उत्कृष्ट पृथक्त्व हजार होते हैं।
3. निर्ग्रन्थ कदाचित् होते हैं, कदाचित् नहीं होते हैं। यदि होते हैं तो जघन्य 1,2,3 उत्कृष्ट 162 होते हैं।
4. स्नातक कदाचित् होते हैं, कदाचित् नहीं होते हैं। यदि होते हैं तो जघन्य 1,2,3 उत्कृष्ट 108 होते हैं।

पूर्व प्रतिपन्न (पहले से उस अवस्था में रहे हुए) की अपेक्षा से -

1. पुलाक कदाचित् होते हैं, कदाचित् नहीं होते हैं। यदि होते हैं तो जघन्य 1,2,3 उत्कृष्ट पृथक्त्व हजार होते हैं।
2. बकुश और प्रतिसेवना कुशील नियमा पृथक्त्व सौ करोड़ होते हैं।
3. कषाय कुशील नियमा पृथक्त्व हजार करोड़ होते हैं।
4. निर्ग्रन्थ कदाचित् होते हैं, कदाचित् नहीं होते हैं। यदि होते हैं तो जघन्य 1,2,3 उत्कृष्ट पृथक्त्व सौ होते हैं।
5. स्नातक नियमा पृथक्त्व करोड़ होते हैं।

ज्ञातव्य- प्रतिपद्यमान-

प्रतिपद्यमान (प्राप्त करते हुए) की अपेक्षा सभी नियंते अशाश्वत हैं। पुलाक, बकुश, प्रतिसेवना कुशील प्रतिपद्यमान की अपेक्षा अशाश्वत हैं। अर्थात् प्रति समय नये बनना, नये जीव पुलाक, बकुश, प्रतिसेवना कुशील पर्याय को प्राप्त करना आवश्यक नहीं है। यदि प्राप्त करें तो जघन्य 1,2,3 उत्कृष्ट पृथक्त्व सौ तक एक समय में प्राप्त कर सकते हैं। इसमें भी पुलाक की संख्या लगभग 200 से 300 तक तथा बकुश, प्रतिसेवना कुशील की संख्या लगभग 200 से 900 तक समझनी चाहिए।

कषाय कुशील साधु वर्तमान में नये बनना (प्रतिपद्यमान), इस अपेक्षा से शाश्वत नहीं है। यदि कभी नये बने तो जघन्य 1,2,3 उत्कृष्ट पृथक्त्व हजार एक समय में बन सकते हैं।

निर्ग्रन्थपने को वर्तमान में नया प्राप्त करना आवश्यक नहीं है। यदि कभी नये निर्ग्रन्थ बने तो एक समय में जघन्य 1,2,3 उत्कृष्ट 162 तक बन सकते हैं। 162 मानने का कारण यह है कि एक समय में अधिक से अधिक 54 उपशम श्रेणि वाले तथा 108 क्षपक श्रेणि वाले निर्ग्रन्थ एक साथ नये बन सकते हैं।

स्नातक भी प्रतिपद्यमान की अपेक्षा अर्थात् नये बनने की अपेक्षा शाश्वत नहीं है। यदि स्नातक नये बने जो जघन्य 1,2,3 उत्कृष्ट 108 क्षपक श्रेणि की अपेक्षा एक समय में बन सकते हैं। एक समय में 108 से अधिक केवली नये नहीं बन पाते हैं।

पूर्व प्रतिपन्न-

पूर्व प्रतिपन्न अर्थात् पहले से ही उस-उस पर्याय में रहे हुए की अपेक्षा पुलाक कभी मिलते हैं, कभी नहीं भी मिलते। पुलाक प्रायोग्य प्रयोजन कभी हो, कभी नहीं हो, अतः पुलाक अशाश्वत है। यदि मिलते हैं तो जघन्य 1,2,3 उत्कृष्ट पृथक्त्व हजार मिल सकते हैं।

बकुश व प्रतिसेवना कुशील पूर्व प्रतिपन्न की अपेक्षा महाविदेह आदि क्षेत्र में पृथक्त्व सौ करोड़ सदैव मिलते हैं। पृथक्त्व सौ करोड़ से तात्पर्य बकुश में 200 से 300 करोड़ तथा प्रतिसेवना कुशील में 400 से 600 करोड़ तक समझना चाहिए।

'कषाय कुशील' पूर्व प्रतिपन्न की अपेक्षा महाविदेहादि क्षेत्रों में पृथक्त्व हजार करोड़ सदाकाल मिलते हैं। बकुश व प्रतिसेवना कुशील के क्रमशः 200+400=600 करोड़ झाङ्गेरी या उत्कृष्ट 900 करोड़ झाङ्गेरी हो सकते हैं। इसलिये कषाय कुशील 2000 करोड़ से 8000 करोड़ व अधिकतम 8091 करोड़ तक हो सकते हैं। क्योंकि 900 करोड़ बकुश व प्रतिसेवना कुशील तथा 9 करोड़ स्नातक इनको जोड़ने पर 900+9=909 करोड़ होते हैं। इनको 9000 करोड़ में से घटाने पर कषाय कुशील 8091 करोड़ के लगभग हो जाते हैं। पुलाक व निर्ग्रन्थ भी 900 व 9000 इनमें मिलने से कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। अतः कषाय कुशील की उत्कृष्ट संख्या 8000 करोड़ झाङ्गेरी तक हो सकती हैं। ये भी मात्र 6-7 गुणस्थान की अपेक्षा, क्योंकि पूर्व प्रतिपन्न 8, 9, 10 गुणस्थान वाले तो पृथक्त्व सौ से अधिक नहीं मिलते।

'निर्ग्रन्थ' पूर्व प्रतिपन्न अर्थात् पहले से उस पर्याय में रहे हुए की अपेक्षा भी अशाश्वत है, क्योंकि उपशम श्रेणि, क्षपक श्रेणि दोनों ही शाश्वत नहीं मिलती। यदि निर्ग्रन्थ मिलते हैं तो जघन्य 1, 2, 3 उत्कृष्ट पृथक्त्व सौ (200 से 900 तक) तक एक समय में मिल सकते हैं।

'स्नातक' पूर्व प्रतिपन्न की अपेक्षा शाश्वत हैं। ये महाविदेहादि क्षेत्रों में सदाकाल पृथक्त्व करोड़ (2 करोड़ से 9 करोड़ तक) मिलते हैं। इसमें भी यह समझना कि यह शाश्वतपना 13वें गुणस्थानवर्ती सयोगी केवली स्नातक की अपेक्षा है। 14वें गुणस्थानवर्ती स्नातक तो कभी मिलते हैं, कभी नहीं भी मिलते हैं, उनमें उत्कृष्ट 6 माह का विरह (अन्तर) भी पड़ सकता है। यदि मिलते भी हैं तो उत्कृष्ट पृथक्त्व सौ ही मिलते हैं।

36. अल्पबहुत्व द्वार

सभी उत्कृष्ट पद में हो तो

1. सबसे थोड़े निर्ग्रन्थ- पृथक्त्व सौ।	900
2. उससे पुलाक संख्यात गुणा- पृथक्त्व हजार।	9,000
3. उससे स्नातक संख्यात गुणा- पृथक्त्व करोड़।	9,00,00,000
4. उससे बकुश संख्यात गुणा- पृथक्त्व सौ करोड़।	3,00,00,00,000
5. उससे प्रतिसेवना कुशील संख्यात गुणा-पृथक्त्व सौ करोड़।	6,00,00,00,000
6. उससे कषाय कुशील संख्यात गुणा- पृथक्त्व हजार करोड़।	8090,99,90,100

(नौ हजार करोड़) 9,000,00,00,000

विशेषावश्यक भाष्य व पंचसंग्रह आदि में सम्पूर्ण संयत 9000 करोड़ तक बताये हैं। कभी अन्य नियंते कम होने पर कषाय कुशील अधिक भी हो सकते हैं।

ज्ञातव्य-

कौनसे नियंते संख्या में अल्प हैं और कौनसे उनकी अपेक्षा संख्या में कितने अधिक हैं, इसकी परस्पर तुलना करना 'अल्पबहुत्व' कहलाती है। छहों प्रकार के नियंतों में सबसे थोड़े निर्ग्रन्थ होते हैं। ये उत्कृष्ट पृथक्त्व सौ पाये जाते हैं। इनकी अपेक्षा पुलाक लब्धि वाले साधु उत्कृष्ट पृथक्त्व हजार पाये जाते हैं। दुगुना अथवा दुगुने से अधिक अन्तर होने पर संख्यात गुणा माना जाता है। पृथक्त्व सौ से पृथक्त्व हजार दुगुने से अधिक होने के कारण निर्ग्रन्थ से पुलाक संख्यात गुणा बतलाये गये हैं।

पुलाक से भी स्नातक संख्यात गुणा होते हैं, क्योंकि स्नातक पृथक्त्व करोड़ होते हैं। स्नातक से बकुश संख्यात गुणा है, क्योंकि बकुश पृथक्त्व सौ करोड़ अर्थात् 200 से 300 करोड़ होते हैं। बकुश से प्रतिसेवना कुशील संख्यात गुणा होते हैं। यद्यपि प्रतिसेवना कुशील भी बकुश के समान पृथक्त्व सौ करोड़ होते हैं, किन्तु प्रतिसेवना कुशील की संख्या 400 से 600 करोड़ तक मानी जाती है। बकुश से प्रतिसेवना कुशील दुगुने होने से संख्यात गुणा हो जाते हैं।

प्रतिसेवना कुशील से भी कषाय कुशील संख्यात गुणा होते हैं क्योंकि कषाय कुशील साधु-साध्वी महाविदेहादि क्षेत्रों में पृथक्त्व हजार करोड़ (2000 से 8091 करोड़) तक लगभग सदाकाल मिलते हैं।

छहों नियंतों की उपर्युक्त अल्पबहुत्व इनकी उत्कृष्ट संख्या होने पर ही बनती हैं, यदि उत्कृष्ट संख्या नहीं हो, कम हो, अथवा वह नियंता उस समय बिल्कुल ही नहीं हो तो उस अल्पबहुत्व में अन्तर आ जायेगा।

कषाय कुशील की संख्या पृथक्त्व हजार करोड़ होती है तथा सभी नियंतों की मिलाकर संख्या भी पृथक्त्व हजार करोड़ ही होती है। इसका तात्पर्य इस प्रकार समझना कि कषाय कुशील साधु-साध्वियों की संख्या 2000 से 8091 करोड़ के लगभग होती है, जबकि सभी नियंतों की संख्या 9000 करोड़ के लगभग तक हो सकती है। इसमें भी गुणस्थानों की अपेक्षा विचार करें तो सातवें अप्रमत्त संयत गुणस्थानवर्ती सभी नियंतों की संख्या लगभग 2000-3000 करोड़ होती है तथा छठे प्रमत्त संयत गुणस्थानवर्ती सभी नियंतों की संख्या लगभग छह-सात हजार करोड़ हो सकती है।

यदि अन्य सभी जघन्य पद में हो व कषाय कुशील उत्कृष्ट पद में हो

पुलाक, निर्ग्रन्थ	0
स्नातक	2 करोड़
बकुश	200 करोड़
प्रतिसेवना कुशील	400 करोड़
कषाय कुशील	8398 करोड़
	9000 करोड़

अधिकतम कषाय कुशील 8 हजार 3 सौ 98 करोड़ तक संभव है। इसलिये 8 हजार करोड़ झाड़ोरी उपयुक्त है।

यह सामान्य कथन है, इससे कम भी उत्कृष्ट ज्ञानियों की दृष्टि में हो सकते हैं पर इससे अधिक नहीं हो सकते।

संजया (संयत) का शोकड़ा

श्री भगवती सूत्र शतक 25, उद्देशक 7 में संजया का शोकड़ा इस प्रकार बतलाया गया है-

संयत के 36 द्वार इस प्रकार से कहे गये हैं- 1. प्रज्ञापन, 2. वेद, 3. राग, 4. कल्प, 5. नियंठा, 5. प्रतिसेवना, 7. ज्ञान, 8. तीर्था, 9. लिंग, 10. शरीर, 11. क्षेत्र, 12. काल, 13. गति, 14. संयम स्थान, 15. सन्निकर्ष-चारित्र पर्याय, 16. योग, 17. उपयोग, 18. कषाय, 19. लेश्या, 20. परिणाम, 21. बन्ध, 22. वेदन, 23. उदीरणा, 24. उपसम्पद्धान, 25. संज्ञा, 26. आहारक, 27. भव, 28. आकर्ष, 29. स्थिति (काल), 30. अन्तर, 31. समुद्घात, 32. क्षेत्र, 33. स्पर्शना, 34. भाव, 35. परिमाण और 36. अल्पबहुत्व।

1. प्रज्ञापन द्वार

संयत- चारित्र मोहनीय कर्म के क्षय, उपशम या क्षयोपशम से उत्पन्न हुए सर्व-विरति परिणाम को संयम (चारित्र) कहते हैं। अथवा जो आठ कर्मों का नाश करें, उसे संयम (चारित्र) कहते हैं। संयम के पालन करने वालों को 'संयत' कहते हैं। निर्ग्रन्थ में मोहनीय की निवृत्ति की अपेक्षा विवेचन हुआ यहाँ सम्यक् यतना-प्रवृत्ति की अपेक्षा कथन हुआ। निवृत्ति प्रधान प्रवृत्ति से पूर्व में निर्ग्रन्थ व पश्चात् संयत का अधिकार आया। चारित्र पाँच प्रकार के कहे गये हैं- 1. सामायिक, 2. छेदोपस्थापनीय, 3. परिहार विशुद्धि, 4. सूक्ष्म सम्पराय और 5. यथाख्यात चारित्र।

1. सामायिक चारित्र - विषय-कषाय और आरंभ-परिग्रहादि सावद्य योग रूप विषम भाव की निवृत्ति तथा सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक् चारित्र की साधनामय प्रवृत्ति तथा समभाव की प्राप्ति को सामायिक चारित्र कहते हैं। अर्थात् सर्व सावद्य योगों का तीन करण-तीन योग से (सर्व प्रकार से) त्याग करना सामायिक चारित्र कहलाता है। इसके दो भेद हैं- 1. इत्वरकालिक, 2. यावत्कथिक।
 - i. इत्वरकालिक- इत्वर अर्थात् अल्पकाल के चारित्र को इत्वरकालिक सामायिक चारित्र कहते हैं। भरत-ऐरवत क्षेत्र में पहले व अन्तिम तीर्थकर के तीर्थ में शिष्यों को सर्व सावद्य योगों का त्याग करा देने के बाद जब तक महाव्रतों में आरोपित नहीं किया जाता, तब तक उन शिष्यों के चारित्र को इत्वरकालिक सामायिक चारित्र कहते हैं। यह जघन्य 7 दिन, मध्यम चार महीने तथा उत्कृष्ट 6 महीने का होता है। दूसरे शब्दों में वर्तमान में करेमि भन्ते के पाठ से सर्व सावद्य योगों का त्रिकरण-त्रियोग से त्याग कराने रूप जो दीक्षा ग्रहण करवायी जाती है, उसे इत्वरकालिक सामायिक चारित्र (छोटी दीक्षा) कहते हैं।
 - ii. यावत्कथिक- यावत्कथिक अर्थात् जीवन भर के लिए। जो सामायिक चारित्र जीवन पर्यन्त के लिए स्वीकार किया जाता है, उसे यावत्कथिक सामायिक चारित्र कहते हैं। यह चारित्र भरत-ऐरवत क्षेत्र में बीच के 22 तीर्थकरों के शासन काल में (दूसरे से तेइसवें तीर्थकर तक के तीर्थ में), महाविदेह क्षेत्र में तथा सभी तीर्थकरों की छद्मस्थ अवस्था में पाया जाता है। इन्हें सामायिक चारित्र लेने के बाद पुनः महाव्रतों में आरोपित नहीं किया जाता है। सामायिक चारित्र से सम्पन्न मुनिराजों-महासतियों को 'सामायिक संयत' कहते हैं।
2. छेदोपस्थापनीय चारित्र - जिस चारित्र में पहले की दीक्षा पर्याय को छेदकर पाँच महाव्रतों में आरोपित (स्थिर करना) किया जाता है, उसे छेदोपस्थापनीय चारित्र कहते हैं। यह चारित्र मात्र भरत व ऐरवत क्षेत्र में ही मिलता है और वह भी मात्र प्रथम व अन्तिम तीर्थकर के तीर्थ में ही मिलता है। इसके दो भेद हैं- 1. सातिचार, 2. निरतिचार।
 - i. सातिचार- भरत-ऐरवत क्षेत्र में पहले व अन्तिम तीर्थकर के तीर्थ में किसी साधु की दीक्षा पर्याय का छेद (कमी) किया जावे अथवा उसे नई दीक्षा प्रदान की जावे, उसे सातिचार छेदोपस्थापनीय चारित्र कहते हैं।
 - ii. निरतिचार- जड़ता के कारण पुनः आरोपण- जैसे चावल के पौधे को उखाड़कर अन्यत्र रोपा जाता है, इससे पूर्व का पौधा नष्ट नहीं होता, उसे विकसित होने का सुअवसर मिलता है, उसी प्रकार सामायिक चारित्र से महाव्रतों के विभागपूर्वक योग्यता प्रवर्तित होती है। इत्वरकालिक सामायिक चारित्र वाले शिष्यों को जब बड़ी दीक्षा (महाव्रतों में आरोपण करना) दी जाय तथा तेइसवें तीर्थकर के तीर्थ के साधु-साध्वियों को जब चौबीसवें तीर्थकर के तीर्थ में पाँच महाव्रतों में आरोपित किया जावे, उसे निरतिचार छेदोपस्थापनीय चारित्र कहते हैं। जैसे- पार्श्वनाथ की परम्परा के- 1. कालास्यवेषीय पुत्र, 2. गांगेय अणगार, 3. उदक पेढाल पुत्र, 4. केशी श्रमण आदि ने भ. महावीर के तीर्थ में चतुर्याम धर्म (चार महाव्रत) से पंचयाम (पाँच

महाव्रत) धर्म को स्वीकार किया। अर्थात् यावत्कथिक सामायिक चारित्र से निरतिचार छेदोपस्थापनीय चारित्र स्वीकार किया था। इसी प्रकार उत्सर्पिणी काल में भी समझना।

3. परिहारविशुद्धि चारित्र - आयम्बिल के अतिरिक्त आहार का परिहार कर कर्मों की विशेष निर्जरा रूपी शुद्धि की जाय, उसे परिहार विशुद्धि चारित्र कहते हैं। इस चारित्र की आराधना नौ साधु एक साथ करते हैं। वे नौ साधु नौ वर्ष की उम्र में दीक्षा अंगीकार करके बीस वर्ष तक गुरु के सान्निध्य में रहकर जघन्य नवें पूर्व की तीसरी आचार वस्तु और उत्कृष्ट कुछ कम दस पूर्व का ज्ञान करते हैं। इसके बाद गुरु महाराज की आज्ञा लेकर परिहारविशुद्धि चारित्र अंगीकार करते हैं।

इनमें से चार साधु छः महीने तक तप करते हैं, ये 'पारिहारिक' कहलाते हैं। चार साधु वैयावृत्य (सेवा) करते हैं, ये 'अनुपारिहारिक' कहलाते हैं। एक साधु वाचना देते हैं। तप करने वाले साधु ग्रीष्म ऋतु में जघन्य उपवास, मध्यम बेला, उत्कृष्ट तेला तप करते हैं। शीत ऋतु में जघन्य बेला, मध्यम तेला, उत्कृष्ट चोला करते हैं। वर्षाकाल में जघन्य तेला, मध्यम चोला, उत्कृष्ट पचोला तप करते हैं। पारणे में आयम्बिल करते हैं। अनुपारिहारिक भी आयम्बिल करते हैं। इसके बाद वैयावृत्य करने वाले साधु भी इस क्रम से छः महीने तक तपस्या करते हैं तथा 6 महीने की तपस्या किये हुए चारों साधु उनकी सेवा करते हैं और वाचना देने वाला वाचना देता रहता है।

चारों साधुओं का 6 माह का तप होने के बाद वाचना देने वाला साधु 6 महीने तक तप करता है, शेष आठ में से कोई एक साधु वाचना देता है तथा सात साधु वैयावृत्य करते हैं। इस प्रकार अठारह महीने में यह परिहार विशुद्धि तप पूरा होता है। परिहार तप पूरा होने पर वे साधु या तो जिनकल्प धारण कर लेते हैं या गच्छ में आ जाते हैं अथवा पुनः परिहारविशुद्धि तप करना प्रारंभ कर देते हैं।

टीकाकारों का कथन है कि एकादि का मरण हो जाने से हुई कमी को गच्छ से नया साधु मिलकर पूर्ति कर सकता है अथवा जितने हैं उतने ही परिहार तप करते रहते हैं। नया आया हुआ साधु जहाँ से औरों का तप चल रहा है, वहाँ से ही वह भी स्वीकार कर लेता है। एक-दो आदि साधु रहने पर यदि जंघाबल क्षीण हो जाय तो परिहारविशुद्धि चारित्र में ही चलते रहते हैं और यदि जंघाबल क्षीण नहीं हो तो जिनकल्प स्वीकार कर लेते हैं।

यह चारित्र केवल छेदोपस्थापनीय चारित्र वाले ही अंगीकार कर सकते हैं। परिहार विशुद्धि चारित्र को तीर्थकर भगवान के सान्निध्य में अथवा जिन साधुओं ने तीर्थकर भगवान के सान्निध्य में इस तप को स्वीकार किया है, उनके पास ही अंगीकार किया जाता है, अन्य के पास नहीं। इस चारित्र के दो भेद हैं- 1. निर्विश्यमान, 2. निर्विष्टकायिक।

- निर्विश्यमान- जो साधु परिहार सम्बन्धी तप को स्वीकार करते हैं, उन्हें निर्विश्यमान कहते हैं।
- निर्विष्टकायिक- जो साधु तप करने के पश्चात् निर्विश्यमान साधुओं की वैयावच्च करते हैं तथा वाचना देते हैं उन्हें निर्विष्टकायिक कहते हैं।

महाविदेह क्षेत्र एवं भरत-ऐरवत में मध्य के 22 तीर्थकरों के शासन में ऋजु एवं प्राज्ञ होने से वे गच्छ में रहकर भी इतनी साधना कर लेते हैं, जिससे उनकी आत्मा इतनी सध जाती है कि बिना परिहार तप के भी अधिक निर्जरा कर लेते हैं। जैसे देश में ही अच्छी कमाई हो तो परदेश जाने की आवश्यकता नहीं होती। इसलिए भी महाविदेह क्षेत्र एवं भरत-ऐरवत क्षेत्र के मध्य के 22 तीर्थकरों के शासन में परिहार विशुद्धि चारित्र नहीं होता है।

परिहार विशुद्धि चारित्र को अंगीकार करने वाले साधुगण परिहारविशुद्धि संयत कहलाते हैं।

4. सूक्ष्म सम्पराय चारित्र - जिस चारित्र में सूक्ष्म सम्पराय अर्थात् संज्वलन लोभ कषाय का सूक्ष्म उदय रहता है, उसे सूक्ष्म सम्पराय चारित्र कहते हैं। इसके दो भेद हैं- 1. विशुद्ध्यमान, 2. संक्लिश्यमान।

i. विशुद्ध्यमान- क्षपक श्रेणि अथवा उपशम श्रेणि पर चढ़ते हुए साधु के परिणाम उत्तरोत्तर शुद्ध रहने के कारण उनका दसवें गुणस्थान में चारित्र विशुद्ध्यमान सूक्ष्म सम्पराय कहलाता है।

ii. संक्लिश्यमान- उपशम श्रेणि से गिरते हुए साधु के परिणाम संक्लेश युक्त होते हैं, इसलिए दसवें गुणस्थान में उनका चारित्र संक्लिश्यमान सूक्ष्म सम्पराय चारित्र कहलाता है।

सूक्ष्म सम्पराय चारित्र से सम्पन्न साधु-साधिवियों को 'सूक्ष्म सम्पराय संयत' कहते हैं।

5. यथाख्यात चारित्र - कषाय का लेश मात्र भी उदय नहीं होने से ग्यारहवें गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थानवर्ती अतिचार रहित चारित्र को 'यथाख्यात चारित्र' कहते हैं। इसके दो भेद हैं- 1. उपशान्त मोह वीतराग चारित्र, 2. क्षीण मोह वीतराग चारित्र। क्षीण मोह वीतराग चारित्र के दो भेद हैं- i. छद्मस्थ क्षीण मोह, ii. केवली क्षीण

मोह। केवली क्षीण मोह के दो भेद हैं- i. सयोगी केवली, ii. अयोगी केवली। यथाख्यात चारित्र से सम्पन्न मुनिराजों को 'यथाख्यात संयत' कहते हैं।

सामायिक और छेदोपस्थापनीय चारित्र में छठे से लेकर नवें तक गुणस्थान होते हैं। परिहार विशुद्धि में छठा-सातवाँ गुणस्थान, सूक्ष्म-सम्पराय में दसवाँ गुणस्थान तथा यथाख्यात चारित्र में ग्यारहवें से लेकर चौदहवें तक गुणस्थान होते हैं।

2. वेद द्वार

1. सामायिक, छेदोपस्थापनीय संयत सवेदी तथा अवेदी दोनों तरह के होते हैं। यदि सवेदी हो तो वेद पावे तीन-स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद (पुरुष नपुंसक)। यदि अवेदी हो तो उपशान्त वेदी अथवा क्षीण वेदी होते हैं।
2. परिहारविशुद्धि संयत में वेद पावे दो- पुरुषवेद और नपुंसकवेद (पुरुष नपुंसक)।
3. सूक्ष्म सम्पराय, यथाख्यात संयत अवेदी ही होते हैं। अवेदी में भी उपशान्तवेदी अथवा क्षीण वेदी होते हैं।

ज्ञातव्य-

सामायिक, छेदोपस्थापनीय संयत में सवेदी-अवेदी कषाय कुशील के समान तथा परिहारविशुद्धि में वेद पुलाक निर्ग्रन्थ के समान समझना चाहिए। सूक्ष्म सम्पराय संयत 10वें गुणस्थानवर्ती कषाय कुशील के समान तथा यथाख्यात संयत निर्ग्रन्थ और स्नातक के समान अवेदी समझने चाहिए।

3. राग द्वार

1. सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धि और सूक्ष्म सम्पराय संयत ये चारों सरागी होते हैं।
2. यथाख्यात संयत वीतरागी होते हैं। ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती उपशान्त कषाय वीतरागी तथा बारहवें-तेरहवें-चौदहवें गुणस्थानवर्ती क्षीण कषाय वीतरागी कहलाते हैं।

ज्ञातव्य -

पहले से लेकर दसवें गुणस्थान तक राग का उदय रहता है, अतः सामायिक आदि चारों संयत सरागी तथा यथाख्यात चारित्र वाले संयत वीतरागी माने गये हैं।

4. कल्प द्वार

1. सामायिक संयत में कल्प पावे 5- स्थित, अस्थित, स्थविर, जिनकल्प और कल्पातीत।
2. छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धि संयत में कल्प पावे 3- स्थित, स्थविर और जिनकल्प।
3. सूक्ष्म सम्पराय और यथाख्यात संयत में कल्प पावे 3- स्थित, अस्थित और कल्पातीत।

ज्ञातव्य -

सामायिक संयत सभी तीर्थंकरों के शासनकाल में हो सकने के कारण इसमें पाँचों कल्प हो सकते हैं। छेदोपस्थापनीय व परिहारविशुद्धि संयत मात्र भरत-ऐरवत क्षेत्र में प्रथम व अन्तिम तीर्थंकर के तीर्थ में होने के कारण स्थित, स्थविर तथा जिनकल्प ये तीन कल्प ही हो सकते हैं। बीच के बाईस तीर्थंकरों के तीर्थ में और महाविदेह क्षेत्र में अस्थित कल्प होता है। वहाँ छेदोपस्थापनीय तथा परिहारविशुद्धि चारित्र नहीं होता। इसलिए छेदोपस्थापनीय और परिहारविशुद्धि संयतों में अस्थित कल्प नहीं होता है। सूक्ष्म सम्पराय और यथाख्यात चारित्र सभी तीर्थंकरों के तीर्थ में होने से स्थित, अस्थित कल्प तथा दसवें से चौदहवें गुणस्थान तक होने से कल्पातीत माने जाते हैं।

पाँच कल्पों की विशेष जानकारी निचले के कल्प द्वार से की जा सकती है।

5. नियंठा द्वार

1. सामायिक, छेदोपस्थापनीय संयत में नियंठा पावे 4- पुलाक, बकुश, प्रतिसेवना कुशील और कषाय कुशील।
2. परिहारविशुद्धि व सूक्ष्म सम्पराय में नियंठा पावे 1- कषाय कुशील।
3. यथाख्यात संयत में नियंठा पावे 2- निर्ग्रन्थ और स्नातक।

ज्ञातव्य -

सामायिक व छेदोपस्थापनीय संयत छठे से लेकर नवें गुणस्थानवर्ती होते हैं, इसलिए इनमें पुलाक, बकुश, प्रतिसेवना कुशील व कषाय कुशील ये चारों नियंते माने गये हैं। परिहार विशुद्धि व सूक्ष्म सम्पराय संयत ये दोनों ही अप्रतिसेवी होते हैं, किसी प्रकार के दोष का सेवन नहीं करते हैं, इस कारण से इन दोनों में एक कषाय कुशील नियंता ही माना जाता है। यथाख्यात संयत में 11 से लेकर 14 तक गुणस्थान होते हैं, अतः 11वें-12वें की अपेक्षा निर्ग्रन्थ तथा 13वें-14वें की अपेक्षा स्नातक का नियंता माना जाता है।

6. प्रतिसेवना द्वार

1. सामायिक, छेदोपस्थापनीय संयत प्रतिसेवी तथा अप्रतिसेवी दोनों तरह के होते हैं। यदि प्रतिसेवी हों तो मूलगुण तथा उत्तरगुण किसी में भी दोष लगाने वाले होते हैं। यदि अप्रतिसेवी हों तो मूलगुण-उत्तरगुण किसी में भी दोष नहीं लगाते हैं।
2. परिहारविशुद्धि, सूक्ष्म सम्पराय तथा यथाख्यात संयत अप्रतिसेवी ही होते हैं।

ज्ञातव्य -

सामायिक-छेदोपस्थापनीय संयत मूलगुण व उत्तरगुणों में दोष लगाने पर प्रतिसेवी तथा दोष नहीं लगाने पर अप्रतिसेवी होते हैं। परिहारविशुद्धि चारित्र वाले यद्यपि छठे-सातवें गुणस्थान वाले होते हैं, किन्तु फिर भी नौ-दस पूर्वों के ज्ञाता होने से, विशेष तप (परिहार तप) की आराधना में संलग्न रहने से किसी भी प्रकार की लब्धि का प्रयोग नहीं करते हैं, किसी भी दोष का सेवन नहीं करते हैं, इसलिए इन्हें अप्रतिसेवी कहा गया है। सूक्ष्म सम्पराय संयत कषाय कुशील के समान अप्रतिसेवी होते हैं। यथाख्यात संयतों के कषाय का लेश मात्र भी उदय नहीं होने से वे तो अप्रतिसेवी ही होते हैं।

7. ज्ञान व श्रुत द्वार

1. सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धि और सूक्ष्म सम्पराय इन चारों संयतों में ज्ञान पावे 2,3 अथवा 4-यदि दो ज्ञान हो तो मति व श्रुतज्ञान। यदि तीन ज्ञान हो तो- मति, श्रुत व अवधि अथवा मति, श्रुत व मनःपर्यवज्ञान। यदि चार ज्ञान हो तो-मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यवज्ञान।
2. यथाख्यात संयत में ज्ञान पावें- 1,2,3,4 एक ज्ञान हो तो केवलज्ञान। 2,3 अथवा 4 ज्ञान सामायिकादि संयत के समान समझना।

श्रुत की मात्रा -

1. सामायिक, छेदोपस्थापनीय तथा सूक्ष्म सम्पराय संयत जघन्य 5 समिति, 3 गुप्ति रूप आठ प्रवचन माता का तथा उत्कृष्ट 14 पूर्वों का (द्वादशांगी का) अध्ययन करते हैं।
2. परिहारविशुद्धि संयत जघन्य नवें पूर्व की तीसरी आचार वस्तु का तथा उत्कृष्ट देशोन (कुछ कम) दस पूर्व का अध्ययन करते हैं।
3. यथाख्यात संयत जघन्य आठ प्रवचन माता का तथा उत्कृष्ट 14 पूर्वों का (द्वादशांगी का) अध्ययन करते हैं तथा श्रुत व्यतिरिक्त (केवलज्ञानी) भी होते हैं।

ज्ञातव्य -

सामायिक, छेदोपस्थापनीय संयतों में जो कषाय कुशील के समान अप्रतिसेवी होते हैं, उनमें मनःपर्यवज्ञान भी हो सकता है, किन्तु जो मूल व उत्तरगुणों के प्रतिसेवी होते हैं, उनमें दो अथवा तीन ज्ञान हो सकते हैं, किन्तु मनःपर्यवज्ञान नहीं होता। परिहारविशुद्धि व सूक्ष्म सम्पराय संयत अप्रतिसेवी होते हैं, अतः उनमें दो, तीन अथवा चार ज्ञान हो सकते हैं। यथाख्यात संयत भी अप्रतिसेवी होते हैं, इसलिए उनमें जो 11वें, 12वें गुणस्थानवर्ती होते हैं, उनमें दो-तीन अथवा चार ज्ञान हो सकते हैं। जो यथाख्यात संयत 13वें, 14वें गुणस्थानवर्ती होते हैं, वे केवलज्ञानी होने के कारण श्रुत व्यतिरिक्त (श्रुतातीत) होते हैं।

मति, श्रुत, अवधि व मनःपर्यवज्ञान ये चारों क्षायोपशमिक ज्ञान कहलाते हैं, ये चारों ज्ञान बारहवें गुणस्थान तक होते हैं, उसके आगे नहीं। 13वें-14वें गुणस्थानवर्ती संयतों में घाती कर्मों का क्षय हो जाने से वे केवलज्ञान वाले होते हैं। केवलज्ञान क्षायिक ज्ञान है अतः केवलज्ञान के प्रकट हो जाने पर चारों क्षायोपशमिक ज्ञान नहीं रहते हैं, इसी कारण से 13वें-14वें गुणस्थान में एक केवलज्ञान ही माना जाता है।

8. तीर्थ द्वार

1. सामायिक, सूक्ष्म सम्पराय तथा यथाख्यात संयत तीर्थ और अतीर्थ दोनों में होते हैं।
2. छेदोपस्थापनीय व परिहारविशुद्धि संयत तीर्थ में ही होते हैं।

ज्ञातव्य -

सामायिक, सूक्ष्म सम्पराय तथा यथाख्यात चारित्र्य ये तीनों तो प्रत्येक साधक को प्राप्त करने ही होते हैं, तभी वह मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। अतः ये तीनों संयत तो तीर्थ व अतीर्थ दोनों में मिल जाते हैं। तीर्थ का विच्छेद हो जाने पर साधु अतीर्थ में हो सकते हैं तथा तीर्थकर और प्रत्येकबुद्ध, तीर्थ के बिना सामायिक आदि चारित्र्य का पालन करते हैं, इसलिए वे भी अतीर्थ में होते हैं।

छेदोपस्थापनीय में शिष्य को महाव्रतों में आरोपित किया जाता है तथा परिहारविशुद्धि चारित्र्य छेदोपस्थापनीय वालों को ही प्राप्त हो पाता है, इस कारण से छेदोपस्थापनीय और परिहार विशुद्धि संयत भरत-ऐरवत क्षेत्र में प्रथम व अन्तिम तीर्थकर के तीर्थ में ही मिलते हैं, अतीर्थ में नहीं।

9. लिंग द्वार

1. सामायिक, छेदोपस्थापनीय, सूक्ष्म सम्पराय तथा यथाख्यात संयत द्रव्य की अपेक्षा स्वलिंग, अन्यलिंग तथा गृहस्थलिंग में होते हैं तथा भाव की अपेक्षा स्वलिंग में होते हैं।
2. परिहारविशुद्धि संयत द्रव्य तथा भाव दोनों की अपेक्षा स्वलिंग में ही होते हैं।

ज्ञातव्य -

छेदोपस्थापनीय संयत में अन्यलिंग व गृहस्थलिंग होने का कारण पुलाकादि के समान समझना चाहिए तथा अन्य संयतों में भाव संयम की अपेक्षा अथवा कारण होने पर द्रव्यलिंग की अपेक्षा तीनों लिंग समझने चाहिए। किन्तु भाव की अपेक्षा ज्ञान-दर्शन-चारित्र्य की सम्यक् आराधना रूप स्वलिंग में होते हैं। लिंग द्वार सम्बन्धी विस्तृत जानकारी नियंते के लिंग द्वार के ज्ञातव्य से समझ लेनी चाहिए।

परिहार विशुद्धि संयत द्रव्य तथा भाव दोनों की अपेक्षा स्वलिंग में ही होते हैं। परिहारविशुद्धि चारित्र्य वाले जहाँ विचर रहे हों, वहाँ का राजा यदि कुपित हो जाय तो मारने से अधिक क्या करेगा, ऐसा सोचकर वे संयत संधारा कर लेते हैं अथवा कुपित होने पर राजा द्वारा जो समय-सीमा दी गई हो, उसमें विहार कर जाते हैं, किन्तु वे लिंग नहीं बदलते हैं, इसलिए द्रव्य की अपेक्षा भी परिहारविशुद्धि चारित्र्य को स्वलिंग (जैन साधु का वेश) में ही मानते हैं।

10. शरीर द्वार

1. सामायिक, छेदोपस्थापनीय संयत में शरीर पावे 3,4 अथवा 5- तीन हो तो औदारिक, तैजस, कर्मण शरीर। चार हो तो औदारिक, वैक्रिय, तैजस, कर्मण। पाँच शरीर हो तो- औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कर्मण।
2. परिहारविशुद्धि, सूक्ष्म सम्पराय तथा यथाख्यात संयत में शरीर पावे तीन- औदारिक, तैजस और कर्मण शरीर।

ज्ञातव्य -

सामायिक, छेदोपस्थापनीय संयत यदि छोटे गुणस्थानवर्ती हैं तो वे वैक्रिय लब्धि अथवा आहारक लब्धि का प्रयोग कर सकते हैं, अतः उनमें लब्धि प्रयोग के समय चार शरीर हो सकते हैं। वैक्रिय व आहारक शरीर लब्धि का प्रयोग साथ में नहीं होता अतः एक साथ चार शरीर ही होते हैं, किन्तु अलग-अलग समयों की अपेक्षा पाँचों शरीर मिल सकते हैं। सातवें से नवें गुणस्थानवर्ती सामायिक, छेदोपस्थापनीय संयत किसी भी प्रकार की लब्धि का प्रयोग नहीं करते, अतः उनमें औदारिक, तैजस और कर्मण ये तीन शरीर ही होते हैं। परिहारविशुद्धि संयत में चौदह पूर्वों के ज्ञान का अभाव होने से आहारक शरीर (आहारक लब्धि) नहीं होता है।

सूक्ष्म सम्पराय और यथाख्यात चारित्र्य अप्रमत्त दशा में होते हैं, वहाँ लब्धि का प्रयोग नहीं होता, इसलिये इनमें भी तीन शरीर ही होते हैं। परिहारविशुद्धि संयत में यद्यपि वैक्रिय लब्धि हो सकती है, किन्तु उनमें उत्सुकता, कौतुकता आदि नहीं होती, इस कारण से वे वैक्रिय लब्धि का प्रयोग नहीं करते हैं, इसलिए परिहार विशुद्धि संयत में भी औदारिक, तैजस और कर्मण ये तीन शरीर ही होते हैं।

11. क्षेत्र द्वार

1. सामायिक, सूक्ष्म सम्पराय तथा यथाख्यात संयत जन्म और सद्भाव की अपेक्षा कर्मभूमि में होते हैं। संहरण की अपेक्षा पन्द्रह कर्मभूमि, अकर्मभूमि दोनों में होते हैं।
2. छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धि संयत जन्म और सद्भाव की अपेक्षा 5 भरत, 5 ऐरवत क्षेत्र में होते हैं। छेदोपस्थापनीय संयत संहरण की अपेक्षा कर्मभूमि, अकर्मभूमि दोनों में होते हैं। परिहारविशुद्धि संयत का संहरण नहीं होता है।

ज्ञातव्य-

सामायिक, सूक्ष्म सम्पराय और यथाख्यात संयतों का जन्म व सद्भाव 15 कर्मभूमिज क्षेत्र है, जबकि छेदोपस्थापनीय व परिहारविशुद्धि संयतों का 5 भरत व 5 ऐरवत क्षेत्र ही है। परिहारविशुद्धि संयत परिहार अर्थात् विशेष तप की आराधना में संलग्न होने से इतने जागृत रहते हैं कि उनका संहरण नहीं होता है। यद्यपि सूक्ष्म सम्पराय व यथाख्यात संयतों का भी अप्रमत्त होने से संहरण नहीं होता, फिर भी कोई छोटे गुणस्थानवर्ती सामायिक, छेदोपस्थापनीय संयत का कोई देवादि संहरण कर ले, वहाँ जाकर उस संयत के परिणामों की विशुद्धि बढ़ती रहे तो वह संहरण क्षेत्र में ही सूक्ष्म सम्पराय और यथाख्यात संयतपने को प्राप्त कर सकता है, इसी अपेक्षा से सूक्ष्म सम्पराय और यथाख्यात का संहरण माना जाता है। अढ़ाई द्वीप के 15 कर्मभूमिज क्षेत्रों में ही मनुष्यों का जन्म होता है, किन्तु गर्भवती स्त्री को संहरण करके अन्य क्षेत्रों में देवतादि ले जाय तो वहाँ प्रसव हो सकता है, किन्तु जन्म नहीं। निश्चय नय से गर्भ में आकर उत्पन्न होना जन्म है, जबकि गर्भ से बाहर निकलना प्रसव है, जिसे व्यवहार नय की अपेक्षा जन्म कह दिया जाता है। तीर्थकरों के जन्म कल्याणक इसी नय की अपेक्षा कहे जाते हैं। अढ़ाईद्वीप के बाहर संयतों का मरण भी नहीं होता। यदि कोई संहरण करके अढ़ाईद्वीप के बाहर संयत को ले जाय तो या तो वही देव अथवा दूसरा देव (इन्द्रादि) उसे मरण समय से पहले अढ़ाईद्वीप में वापस ले आता है। उसके बाद ही उस संयत का मरण होता है।

12. काल द्वार

1. अवसर्पिणी काल में सामायिक, छेदोपस्थापनीय संयत जन्म व सद्भाव की अपेक्षा 3,4,5वें आरे में होते हैं।
2. परिहारविशुद्धि, सूक्ष्म सम्पराय और यथाख्यात संयत जन्म की अपेक्षा 3,4थे आरे में तथा सद्भाव की अपेक्षा 3,4,5वें आरे में होते हैं।
3. उत्सर्पिणी काल में पाँचों संयत जन्म की अपेक्षा 2,3,4थे आरे में तथा सद्भाव की अपेक्षा 3,4थे आरे में होते हैं।
4. सामायिक, छेदोपस्थापनीय, सूक्ष्म सम्पराय तथा यथाख्यात संयत संहरण की अपेक्षा 30 अकर्मभूमि में हो सकते हैं। परिहारविशुद्धि संयत का संहरण नहीं होता है।
5. नो उत्सर्पिणी नो अवसर्पिणी काल में (महाविदेह क्षेत्र में) जन्म और सद्भाव की अपेक्षा सामायिक, सूक्ष्म सम्पराय तथा यथाख्यात संयत चौथे पलिभाग में (महाविदेह क्षेत्र में) होते हैं। संहरण की अपेक्षा चारों पलिभाग में (1. देवकुरु-उत्तरकुरु, 2. हरिवास-रम्यक्वास, 3. हेमवत-ऐरण्यवत और 4. महाविदेह क्षेत्र) मिलते हैं।

ज्ञातव्य-

उत्सर्पिणी काल में पाँचों प्रकार के संयत जन्म की अपेक्षा 2,3,4थे आरे में बतलाया है। इसमें इतना ध्यान रखना चाहिए यथाख्यात संयतों में 11वें, 12वें गुणस्थानवर्ती का तथा सामान्य केवली बनने वाले संयतों का जन्म तो दूसरे आरे के अन्त में हो जाता है, किन्तु तीर्थकर का जन्म दूसरे आरे में नहीं होता। उत्सर्पिणी काल के प्रथम तीर्थकर का जन्म तीसरे आरे के 3 वर्ष, 8 मास, 15 दिन बीतने के बाद होता है।

13. गति द्वार

	जघन्य	उत्कृष्ट
सामायिक, छेदोपस्थापनीय संयत की गति	पहला देवलोक	अनुत्तर विमान
परिहारविशुद्धि संयत की	पहला देवलोक	आठवाँ देवलोक
सूक्ष्म सम्पराय, यथाख्यात संयत	पाँच अनुत्तर विमान में जाते हैं।	
यथाख्यात (स्नातक) संयत	मोक्ष में जाते हैं।	
स्थिति	जघन्य	उत्कृष्ट
सामायिक, छेदोपस्थापनीय संयत	दो पत्त्योपम	33 सागरोपम
परिहारविशुद्धि संयत	दो पत्त्योपम	18 सागरोपम
सूक्ष्म सम्पराय, यथाख्यात संयत	अजघन्य अनुत्कृष्ट	33 सागरोपम
यथाख्यात संयत	सादि अनन्त (सिद्धों की अपेक्षा)	

1. सामायिक, छेदोपस्थापनीय संयत आराधक हो तो पाँच पदवी (इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश, लोकपाल और अहमिन्द्र) में से एक पदवी पाता है।
2. परिहारविशुद्धि संयत आराधक हो तो चार पदवियों (अहमिन्द्र को छोड़कर) में से कोई एक पदवी पाता है।
3. सूक्ष्म सम्पराय और यथाख्यात संयत आराधक हो तो एक अहमिन्द्र की पदवी पाता है।

ज्ञातव्य-

सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धि व सूक्ष्म सम्पराय संयत की गति, स्थिति व पदवी का उल्लेख उनके उस-उस अवस्था में आयु बन्ध होने रूप आराधक की अपेक्षा से समझना चाहिए। क्योंकि विराधक होने पर तो वे नरकादि सभी गतियों में जा सकते हैं। परिहारविशुद्धि संयत आराधक होने पर भी काल करके नवग्रैवेयकादि में नहीं जा पाते, इस कारण से वे अहमिन्द्र की पदवी प्राप्त नहीं करते हैं।

यथाख्यात चारित्र में भी 11वें गुणस्थानवर्ती निर्ग्रन्थ तो नीचे गिरने पर विराधक हो सकते हैं तथा आयु बन्ध के अनुसार चारों गतियों में जा सकते हैं, पूर्व बद्धायु यथाख्यात चारित्री जीव यदि काल करते हैं तो पाँच अनुत्तर विमान में जाते हैं, किन्तु 12,13,14वें गुणस्थानवर्ती यथाख्यात संयत तो नियमा उसी भव में मोक्ष में जाते हैं।

14. संयम-स्थान द्वार

1. सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धि और सूक्ष्म सम्पराय संयत के संयम-स्थान असंख्यात होते हैं।
2. यथाख्यात संयत में अजघन्य अनुत्कृष्ट एक ही संयम स्थान होता है।

अल्पबहुत्व- सबसे थोड़ा यथाख्यात का संयम स्थान एक। उससे सूक्ष्म सम्पराय के संयम-स्थान असंख्यात गुणा। उससे परिहारविशुद्धि के संयम-स्थान असंख्यात गुणा। उससे सामायिक, छेदोपस्थापनीय के संयम-स्थान परस्पर तुल्य, किन्तु परिहारविशुद्धि से असंख्यात गुणा।

ज्ञातव्य-

यथाख्यात संयतों के मोहनीय कर्म का लेशमात्र भी उदय नहीं रहता है, इसलिए संयम-स्थानों में तरतमता नहीं होती। यही कारण है कि 11वें से लेकर 14वें गुणस्थानवर्ती सभी यथाख्यात संयतों में एक ही प्रकार का संयम-स्थान माना गया है।

सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धि और सूक्ष्म सम्पराय संयत के संयम-स्थान असंख्यात-असंख्यात होते हैं। इनमें भी सूक्ष्म सम्पराय संयम के मात्र दसवाँ गुणस्थान होने से तथा स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त मात्र होने से संयम स्थान कम हैं। सूक्ष्म सम्पराय से परिहारविशुद्धि में संयमस्थान असंख्यात गुणा अधिक हैं, क्योंकि 29 वर्ष कम एक पूर्व कोटि वर्ष तक इसमें छठे-सातवें गुणस्थान में रह सकते हैं। परिहारविशुद्धि की अपेक्षा भी सामायिक, छेदोपस्थापनीय नौ वर्ष कम एक पूर्व कोटि वर्ष तक रहने तथा 6 से 9 तक गुणस्थान मिलने के कारण इनके संयम-स्थान असंख्यात गुणा अधिक हैं।

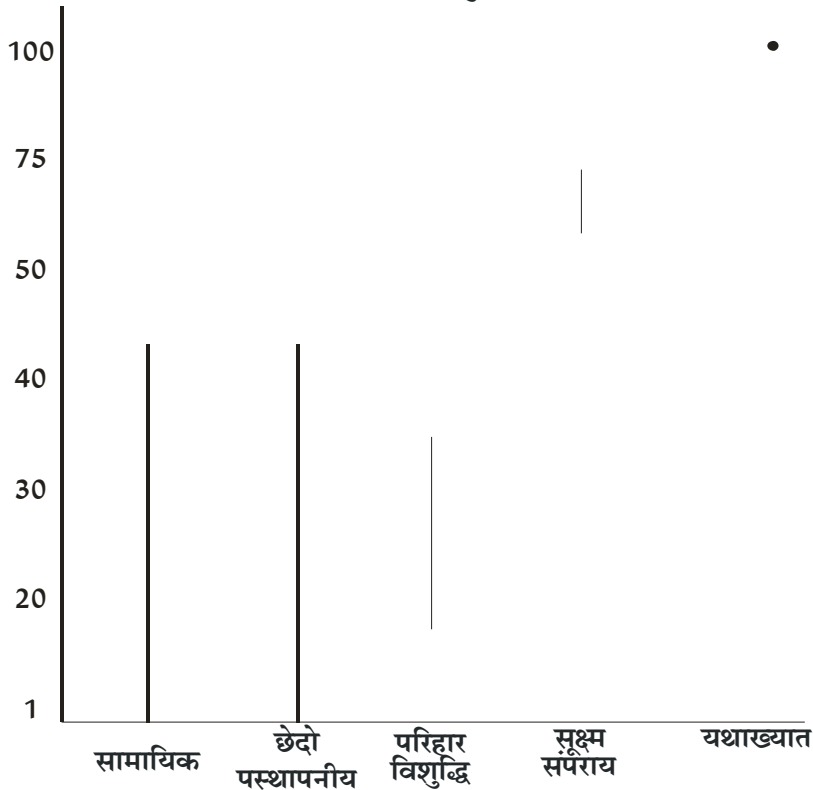
15. सन्निकर्ष (निकास) द्वार

1. 'सामायिक संयत' सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धि संयत के साथ छट्टाणवडिया (षट्स्थानपतित) है। 'सामायिक संयत' सूक्ष्म सम्पराय और यथाख्यात संयत से अनन्तगुणा हीन है।
2. 'छेदोपस्थापनीय संयत' सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धि संयत के साथ छट्टाणवडिया है। 'छेदोपस्थापनीय संयत' सूक्ष्म सम्पराय और यथाख्यात संयत से अनन्तगुणा हीन है।
3. 'परिहारविशुद्धि संयत' सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धि संयत के साथ छट्टाणवडिया है। 'परिहारविशुद्धि संयत' सूक्ष्म सम्पराय और यथाख्यात संयत से अनन्तगुणा हीन है।
4. 'सूक्ष्म सम्पराय संयत' - सूक्ष्म सम्पराय संयत से परस्पर कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य, कदाचित् अधिक हो। जो हीन होवे तो अनन्तगुणा हीन तथा अधिक हो तो अनन्त गुणा अधिक होते हैं। 'सूक्ष्म सम्पराय संयत' सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धि से अनन्तगुणा अधिक होता है। 'सूक्ष्म सम्पराय संयत' यथाख्यात संयत से अनन्तगुणा हीन है।
5. 'यथाख्यात संयत' यथाख्यात संयत से परस्पर में तुल्य है। 'यथाख्यात संयत' शेष चारों संयत से अनन्तगुणा अधिक होता है।

अल्पबहुत्व-

1. सबसे थोड़े सामायिक संयत और छेदोपस्थापनीय संयत के जघन्य चारित्र पर्याय-परस्पर में तुल्य।
2. उससे परिहारविशुद्धि के जघन्य चारित्र-पर्याय अनन्तगुणा।
3. उससे परिहारविशुद्धि के उत्कृष्ट चारित्र-पर्याय अनन्तगुणा।
4. उससे सामायिक, छेदोपस्थापनीय के उत्कृष्ट चारित्र-पर्याय परस्पर तुल्य किन्तु परिहारविशुद्धि से अनन्त गुणा।
5. उससे सूक्ष्म सम्पराय के जघन्य चारित्र-पर्याय अनन्तगुणा।
6. उससे सूक्ष्म सम्पराय के उत्कृष्ट चारित्र-पर्याय अनन्तगुणा।
7. उससे यथाख्यात के अजघन्य-अनुत्कृष्ट चारित्र-पर्याय अनन्तगुणा।

संयतों की अल्प बहुत्व का ग्राफ



ज्ञातव्य-

सन्निकर्ष अर्थात् चारित्र पर्यायों के आधार पर संयोजन करना-तुलना करना। चारित्र-पर्यायें अनन्त होती हैं। इनसे सम्बन्धित विवेचन नियंठा के इसी द्वार में देखा जा सकता है। परिहारविशुद्धि चारित्र एक विशेष प्रकार की मध्यम श्रेणी

की तपाराधना है। इसलिए इसकी चारित्र पर्यायें सामायिक-छेदोपस्थापनीय की जघन्य चारित्र-पर्यायों से अनन्तगुणी अधिक, किन्तु इनकी उत्कृष्ट चारित्र पर्यायों से अनन्त गुणी हीन मानी गई हैं।

'सूक्ष्म सम्पराय संयत' सामायिक, छेदोपस्थापनीय तथा परिहारविशुद्धि संयत से उत्कृष्ट होते हैं, अतः उनकी चारित्र-पर्याय इन तीनों से अनन्त गुणी अधिक मानी हैं। जबकि यथाख्यात संयत से कम विशुद्धि वाले होने से इनकी अपेक्षा अनन्त गुणी हीन पर्यायें बतलाई हैं। सूक्ष्म सम्पराय संयत में मात्र साकारोपयोग ही होता है, स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त की ही होती है तथा इनमें परस्पर में जघन्य, उत्कृष्ट चारित्र पर्यायों में भी अनन्तगुणा अन्तर होता है। यथाख्यात संयत में शेष चारों संयतों की अपेक्षा अधिक विशुद्धि होने के कारण चारित्र-पर्यायें अनन्तगुणी अधिक होती हैं। यथाख्यात संयतों में मोहनीय कर्म का बिल्कुल भी उदय नहीं होने के कारण इनकी चारित्र पर्यायें अजघन्य-अनुत्कृष्ट अर्थात् एक समान बतलाई गई हैं।

16. योग द्वार

1. सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धि तथा सूक्ष्म सम्पराय संयत सयोगी होते हैं, उनमें योग पावे तीनों ही।
2. यथाख्यात संयत सयोगी और अयोगी दोनों होते हैं। सयोगी होवे तो योग पावे तीनों ही।

ज्ञातव्य-

पहले से लेकर तेरहवें गुणस्थान तक योग होते हैं। सामायिक आदि चार संयत छठे से दसवें गुणस्थान तक वाले होते हैं, इसलिए वे सयोगी होते हैं। मन, वचन और काया ये तीनों योग वाले होते हैं। इनमें भी इतना ध्यान रखना चाहिए कि तीनों योगों की प्रवृत्ति संयतों में एक साथ हो सकती है, किन्तु उपयोग किसी एक योग में ही रहता है। मनयोग के चार भेदों में से किसी एक भेद में, वचनयोग के चार भेदों में से किसी एक भेद में तथा काययोग के सात भेदों में से किसी एक भेद में ही एक समय में प्रवृत्ति हो सकती है। अलग-अलग समयों की अपेक्षा तो संयत की योग्यतानुसार सभी भेदों में प्रवृत्ति हो ही सकती है।

यथाख्यात संयतों में 11, 12 व 13वें गुणस्थानवर्ती तो सयोगी ही होते हैं, किन्तु चौदहवें गुणस्थान वाले संयत अयोगी होते हैं।

17. उपयोग द्वार

1. सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धि तथा यथाख्यात संयत में साकार (ज्ञान) और अनाकार (दर्शन) दोनों उपयोग पावे।
2. सूक्ष्म सम्पराय संयत में साकार उपयोग ही होता है।

ज्ञातव्य-

सूक्ष्म सम्पराय संयत को छोड़कर शेष सभी संयतों में साकार (ज्ञान) तथा अनाकार (दर्शन) दोनों उपयोग होते हैं, किन्तु सूक्ष्म सम्पराय संयत में मात्र साकार उपयोग ही होता है।

जो भी संयत दसवें गुणस्थान में प्रवेश करते हैं वे साकार उपयोग में ही प्रवेश करते हैं। इस गुणस्थान का स्वभाव ही ऐसा है कि इसमें जब तक रहते हैं, तब तक मात्र साकार उपयोग में ही जीव की प्रवृत्ति रहती है। अतः यह कहा जा सकता है कि सूक्ष्म सम्पराय संयत में प्रवृत्ति की अपेक्षा चार ज्ञान रूप साकार उपयोग तथा क्षयोपशम (लब्धि) की अपेक्षा चार ज्ञान, तीन दर्शन ये सात उपयोग होते हैं।

सामायिक, छेदोपस्थापनीय और परिहारविशुद्धि संयत में चार ज्ञान, 3 दर्शन ये सात उपयोग हो सकते हैं। यथाख्यात संयत में 11वें, 12वें गुणस्थान वाले में उपर्युक्त सात उपयोग हो सकते हैं, किन्तु 13वें, 14वें गुणस्थान वाले में केवलज्ञान, केवलदर्शन ये दो उपयोग ही होते हैं।

18. कषाय द्वार

1. सामायिक, छेदोपस्थापनीय में संज्वलन कषाय पावे- कदाचित् चारों, कदाचित् तीन-मान, माया, लोभ। कदाचित् दो-माया, लोभ।
2. परिहारविशुद्धि संयत में संज्वलन कषाय पावे- चारों।
3. सूक्ष्म सम्पराय संयत में संज्वलन कषाय पावे एक- लोभ।
4. यथाख्यात संयत अकषायी होते हैं। उपशान्त कषायी अथवा क्षीण कषायी होते हैं।

ज्ञातव्य-

सामायिक व छेदोपस्थापनीय चारित्र छठे से लेकर नवें गुणस्थान तक होता है, अतः इनमें संज्वलन कषाय के चारों भेद मिलते हैं। नवें गुणस्थान में जब संज्वलन क्रोध का उपशम अथवा क्षय हो जाता है तब उनमें क्रोध को छोड़कर तीन

कषाय (मान, माया, लोभ) का उदय रहता है। जब संज्वलन मान का भी उपशम अथवा क्षय कर देते हैं तब उनमें माया व लोभ ये दो कषाय ही उदय में रहती हैं।

परिहारविशुद्धि संयत में संज्वलन की चारों कषाय तथा सूक्ष्म सम्पराय संयत में संज्वलन की मात्र लोभ कषाय ही उदय में रहती है। यथाख्यात संयतों में संज्वलन की चारों कषायों का (सम्पूर्ण मोहनीय कर्म का) उदय नहीं रहता है, इसलिए वे अकषायी होते हैं। ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती उपशान्त कषाय छद्मस्थ वीतरागी, बारहवें गुणस्थानवर्ती क्षीण कषाय छद्मस्थ वीतरागी, तेरहवें गुणस्थानवर्ती सयोगी केवली वीतरागी तथा चौदहवें गुणस्थानवर्ती अयोगी केवली वीतरागी संयत कहलाते हैं।

19. लेश्या द्वार

1. सामायिक, छेदोपस्थापनीय में लेश्या पावे-छहों।
2. परिहारविशुद्धि संयत में लेश्या पावे तीन- तेजो, पद्म, शुक्ल लेश्या।
3. सूक्ष्म सम्पराय संयत में लेश्या पावे एक- शुक्ल लेश्या।
4. यथाख्यात संयत में लेश्या पावे एक- शुक्ल लेश्या और अलेशी भी।

ज्ञातव्य-

सामायिक व छेदोपस्थापनीय संयत में छहों लेश्याएँ मिल सकती हैं, इसमें भी इतना ध्यान रखना चाहिए कि छठे गुणस्थानवर्ती में छहों, सातवें गुणस्थान वालों में तीन-तेजो, पद्म, शुक्ल लेश्या तथा आठवें, नवें गुणस्थान वालों में एक शुक्ल लेश्या ही होती है। परिहारविशुद्धि संयत में यद्यपि छठा-सातवाँ गुणस्थान होता है, तथापि तप रूप विशेष साधना में संलग्न रहने से उनमें तीन शुभ लेश्या ही होती है। सूक्ष्म सम्पराय संयत में तो स्वाभाविक रूप से शुक्ल लेश्या ही होती है।

यथाख्यात संयत में 11वें, 12वें गुणस्थान वालों में एक शुक्ल लेश्या तथा 13वें गुणस्थान वालों में परम शुक्ल लेश्या होती है। चौदहवें गुणस्थान वाले अलेशी (लेश्या रहित) होते हैं।

20. परिणाम द्वार

1. सामायिक, छेदोपस्थापनीय और परिहारविशुद्धि संयत में परिणाम पावे तीन- हीयमान, वर्द्धमान, अवस्थित। हीयमान, वर्द्धमान की स्थिति जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त। अवस्थित की स्थिति जघन्य एक समय, उत्कृष्ट सात समय।
2. सूक्ष्म सम्पराय संयत में परिणाम पावे दो- वर्द्धमान और हीयमान। हीयमान और वर्द्धमान की स्थिति जघन्य एक समय उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त।
3. यथाख्यात संयत में परिणाम पावे दो-वर्द्धमान और अवस्थित। वर्द्धमान की स्थिति जघन्य-उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की। अवस्थित की स्थिति जघन्य एक समय, उत्कृष्ट देशोन करोड़ पूर्व की।

ज्ञातव्य-

सामायिक, छेदोपस्थापनीय और परिहारविशुद्धि संयत के परिणामों की स्थिति पुलाकादि निर्ग्रन्थों के समान समझनी चाहिए। सूक्ष्म सम्पराय संयत दसवें गुणस्थानवर्ती होते हैं। दसवें गुणस्थान में जीव का स्वभाव ही ऐसा रहता है कि वर्द्धमान और हीयमान ये दो ही परिणाम मिलते हैं। उपशम श्रेणि अथवा क्षपक श्रेणि में चढ़ते समय दसवें गुणस्थान में आने पर वर्द्धमान परिणाम रहते हैं तथा उपशम श्रेणि में 11वें गुणस्थान से गिरकर दसवें गुणस्थान में आने वाले जीवों में हीयमान परिणाम होते हैं।

यथाख्यात संयत में 11वें, 12वें गुणस्थान वालों के परिणाम निर्ग्रन्थों के समान तथा 13वें, 14वें गुणस्थान वालों के परिणाम स्नातकों के समान समझने चाहिए। संक्षेप में परिणामों को इस प्रकार समझ सकते हैं-

संयत	हीयमान	वर्द्धमान	अवस्थित
सामायिक	✓	✓	✓
छेदोपस्थापनीय	✓	✓	✓
परिहारविशुद्धि	✓	✓	✓
सूक्ष्म सम्पराय	✓	✓	X
यथाख्यात	X	✓	✓

21. बन्ध द्वार

1. सामायिक, छेदोपस्थापनीय और परिहारविशुद्धि संयत सात अथवा आठ कर्मों को बान्धते हैं।
2. सूक्ष्म सम्पराय संयत 6 कर्मों (आयु और मोहनीय को छोड़कर) को बान्धते हैं।
3. यथाख्यात संयत 11वें, 12वें, 13वें गुणस्थान वाले 1 सातावेदनीय कर्म को बान्धते हैं। 14वें गुणस्थान वाले अबन्धक होते हैं।

22. वेदन द्वार

1. सामायिक आदि चार संयत नियमा आठ कर्मों को (कषाय कुशील के समान) वेदते (उदय) हैं।
2. यथाख्यात संयत मोहनीय को छोड़कर सात कर्मों को (11वें, 12वें गुणस्थान वाले निर्ग्रन्थों के समान) तथा चार अघाती कर्मों को (13वें, 14वें गुणस्थान वाले स्नातकों के समान) वेदते हैं।

23. उदीरणा द्वार

1. सामायिक, छेदोपस्थापनीय और परिहारविशुद्धि संयत 7 (आयु को छोड़कर) अथवा 8 अथवा 6 कर्मों की (आयु और वेदनीय कर्म के बिना) उदीरणा करते हैं।
2. सूक्ष्म सम्पराय संयत 6 कर्मों की अथवा 5 कर्मों की (मोहनीय को छोड़कर) उदीरणा करते हैं।
3. यथाख्यात संयत 5 कर्मों की अथवा दो कर्मों की (नाम व गोत्र की) उदीरणा करते हैं।

ज्ञातव्य -

सामायिक, छेदोपस्थापनीय और परिहारविशुद्धि संयत में उदीरणा छठे से नवें गुणस्थानवर्ती कषाय कुशील के समान समझनी चाहिए। सूक्ष्म सम्पराय संयत में यदि उपशमश्रेणि वाला है तो दसवें गुणस्थान के अन्तिम समय तक मोहनीय कर्म की उदीरणा समझनी चाहिए। यदि वह क्षपक श्रेणि वाला है तो दसवें गुणस्थान में मोहनीय कर्म की स्थिति एक आवलिका शेष रहने के पहले-पहले ही मोहनीय की उदीरणा समझनी चाहिए, उसके बाद में मोहनीय कर्म की उदीरणा नहीं होती है। यथाख्यात संयत में 5 कर्मों अथवा दो कर्मों की उदीरणा निर्ग्रन्थ और स्नातकों के समान समझनी चाहिए।

24. उपसम्पद्धान द्वार

1. 'सामायिक संयत' सामायिक चारित्र को छोड़ता हुआ 4 स्थानों में जाता है- 1. छेदोपस्थापनीय, 2. सूक्ष्म सम्पराय, 3. असंयत, 4. संयतासंयत।
2. 'छेदोपस्थापनीय संयत' छेदोपस्थापनीय चारित्र को छोड़ता हुआ 5 स्थानों में जाता है- 1. सामायिक, 2. परिहारविशुद्धि, 3. सूक्ष्म सम्पराय, 4. असंयत, 5. संयतासंयत।
3. 'परिहारविशुद्धि संयत' परिहारविशुद्धि चारित्र को छोड़कर सीधा 2 स्थानों में जाता है- 1. छेदोपस्थापनीय, 2. असंयत।
4. 'सूक्ष्म सम्पराय संयत' सूक्ष्म सम्पराय चारित्र को छोड़कर सीधा 4 स्थानों में जाता है- 1. सामायिक, 2. छेदोपस्थापनीय, 3. यथाख्यात, 4. असंयत।
5. 'यथाख्यात संयत' यथाख्यात चारित्र को छोड़कर सीधा 3 स्थानों में जाता है- 1. सूक्ष्म सम्पराय, 2. असंयत, 3. सिद्ध (मोक्ष में)।

ज्ञातव्य -

'सामायिक संयत' प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर के तीर्थ में इत्वरिक सामायिक चारित्र से छेदोपस्थापनीय चारित्र को प्राप्त करता है। महाविदेह क्षेत्र में तथा भरत-ऐरवत क्षेत्र में मध्य के 22 तीर्थंकरों के तीर्थ में यावत्कथिक सामायिक चारित्र वाले छठे से नवें गुणस्थान तक रहते हैं। उसके बाद दसवें गुणस्थान को प्राप्त कर वे सूक्ष्म सम्पराय चारित्र के धारक बन जाते हैं। मरण की अपेक्षा वे वैमानिकादि में असंयत में चले जाते हैं तथा सामायिक चारित्र से नीचे गिरने पर संयतासंयतपने को भी प्राप्त कर सकते हैं। इन कारणों से सामायिक संयत को उपर्युक्त चार स्थानों को सीधा प्राप्त करना बतलाया जाता है।

छेदोपस्थापनीय संयत सामायिक चारित्र को प्राप्त कर सकते हैं। भरत-ऐरवत क्षेत्र में पहले तीर्थंकर के साधु जब दूसरे तीर्थंकर के तीर्थ में प्रवेश करते हैं, तब छेदोपस्थापनीय संयत अवस्था को छोड़कर यावत्कथिक सामायिक चारित्र को प्राप्त कर लेते हैं। छेदोपस्थापनीय संयत ही परिहारविशुद्धि तप की आराधना कर पाते हैं। छेदोपस्थापनीय संयत आगे बढ़कर श्रेणि पर आरोहण कर जब दसवें गुणस्थान में आते हैं तो वे सूक्ष्म सम्पराय चारित्री कहलाते हैं। असंयत व संयतासंयत को पाने का विवरण सामायिक संयत के समान समझना चाहिए।

'परिहारविशुद्धि संयत' परिहारविशुद्धि चारित्र को छोड़कर यदि वापस गच्छ में आते हैं तो वे छेदोपस्थापनीय चारित्र को स्वीकार करते हैं। परिहारविशुद्धि चारित्र में रहते हुए यदि मरण को प्राप्त हो जाय तो वैमानिक देवलोकों में जाकर असंयत अवस्था को प्राप्त करते हैं।

सूक्ष्म सम्पराय संयत जब उपशम श्रेणि से नीचे गिरते हैं तो यदि वे पहले सामायिक चारित्र वाले होते हैं तो सामायिक संयतपने को प्राप्त करते हैं। यदि वे पहले छेदोपस्थापनीय चारित्र वाले होते हैं तो वे छेदोपस्थापनीय संयतपने को प्राप्त करते हैं। यदि श्रेणि से ऊपर चढ़े तो यथाख्यात संयतपने को प्राप्त करते हैं और यदि वे मरण को प्राप्त हो जाये तो अनुत्तर वैमानिक देव बनकर असंयत अवस्था को प्राप्त करते हैं।

यथाख्यात संयत यदि उपशम श्रेणि से गिरते हैं तो वे सूक्ष्म सम्पराय संयतपने को प्राप्त करते हैं। यदि उपशम श्रेणि में 11वें गुणस्थान में मरण हो जाये तो अनुत्तर वैमानिक देवों में असंयतपने को प्राप्त करते हैं। यदि क्षपक श्रेणि वाले हो तो स्नातकपने को प्राप्त करके सिद्ध गति में (मोक्ष में) चले जाते हैं।

25. संज्ञा द्वार

1. सामायिक, छेदोपस्थापनीय और परिहारविशुद्धि संयत संज्ञा वाले तथा बिना संज्ञा वाले भी होते हैं।
2. सूक्ष्म सम्पराय और यथाख्यात संयत बिना संज्ञा वाले (आहारादि की आसक्ति से रहित) ही होते हैं।

ज्ञातव्य -

छठे गुणस्थानवर्ती अशुभ योगी संयत संज्ञा वाले तथा शुभयोगी संयत बिना संज्ञा वाले होते हैं। सातवें से लेकर 14वें गुणस्थान वाले सभी प्रकार के संयत आहारादि की आसक्ति से रहित होने के कारण बिना संज्ञा वाले (नो संज्ञोपयुक्त) ही होते हैं।

26. आहार द्वार

1. सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धि और सूक्ष्म सम्पराय ये चारों प्रकार के संयत आहारक होते हैं।
2. यथाख्यात संयत आहारक तथा अनाहारक दोनों तरह के होते हैं।

ज्ञातव्य -

सामायिकादि चारों संयत कषाय कुशील निर्ग्रन्थ के समान आहारक समझने चाहिए। यथाख्यात संयत 11वें, 12वें तथा 13वें गुणस्थान की अपेक्षा आहारक समझना चाहिए। 13वें गुणस्थान में केवली समुद्घात के 3,4,5वें समय की अपेक्षा तथा 14वें गुणस्थानवर्ती स्नातकों की अपेक्षा अनाहारक समझना चाहिए।

27. भव द्वार

1. सामायिक, छेदोपस्थापनीय संयतपना जघन्य एक भव में तथा उत्कृष्ट आठ भवों में आता है।
2. परिहारविशुद्धि, सूक्ष्म सम्पराय तथा यथाख्यात संयतपना जघन्य एक भव में तथा उत्कृष्ट तीन भवों में आता है।

ज्ञातव्य -

सामायिक, छेदोपस्थापनीय संयतपना कषाय कुशील साधु के समान जघन्य एक भव में तथा उत्कृष्ट आठ भवों में प्राप्त होता है। आठवें भव में वह संयत अवश्य ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

परिहारविशुद्धि संयतपना पुलाक साधु के समान उत्कृष्ट तीन भवों में प्राप्त हो सकता है। किन्तु तीसरे भव में मोक्ष जाने की भजना है, नियमा नहीं। सूक्ष्म सम्पराय संयतपना 10वें गुणस्थानवर्ती कषाय कुशील साधु के समान उत्कृष्ट तीन भवों में प्राप्त हो सकता है। यथाख्यात संयतपना क्षपकश्रेणि की अपेक्षा एक भव में ही प्राप्त होता है, किन्तु उपशम श्रेणि की अपेक्षा से 11वें गुणस्थानवर्ती संयतपना दो भवों में ही प्राप्त हो सकता है।

क्षपक श्रेणि की अपेक्षा सूक्ष्म सम्पराय तथा यथाख्यात संयतपना एक भव में ही आता है, क्योंकि वह उसी भव में मोक्ष में चला जाता है। अधिक खुलासा नियंते के भव द्वार में देखा जा सकता है।

28. आकर्ष द्वार

1. सामायिक संयतपना एक भव में जघन्य एक बार, उत्कृष्ट पृथक्त्व सौ बार प्राप्त होता है। अनेक भवों में जघन्य दो बार उत्कृष्ट पृथक्त्व हजार बार (7200) प्राप्त होता है।
2. छेदोपस्थापनीय संयतपना एक भव में जघन्य एक बार, उत्कृष्ट 120 बार। अनेक भवों में जघन्य दो बार, उत्कृष्ट 900 से अधिक तथा 1000 से कम अर्थात् 960 बार।
3. परिहारविशुद्धि संयतपना एक भव में जघन्य एक बार, उत्कृष्ट तीन बार। अनेक भवों में जघन्य दो बार, उत्कृष्ट 7 बार।

4. सूक्ष्म सम्पराय संयतपना एक भव में जघन्य एक बार, उत्कृष्ट चार बार। अनेक भवों में जघन्य दो बार, उत्कृष्ट 9 बार।
5. यथाख्यात संयतपना एक भव में जघन्य एक बार, उत्कृष्ट दो बार तथा अनेक भवों में जघन्य दो बार, उत्कृष्ट 5 बार प्राप्त होता है।

ज्ञातव्य -

सामायिक संयतपना एक भव में उत्कृष्ट 900 बार तथा 8 भवों में उत्कृष्ट 7200 बार प्राप्त हो सकता है। छेदोपस्थापनीय संयतपना एक भव में उत्कृष्ट 120 बार आता है तथा 8 भवों में $120 \times 8 = 960$ बार प्राप्त हो सकता है। भावों की तरतमता से ये आकर्ष बन जाते हैं।

परिहारविशुद्धि संयतपना के आकर्ष पुलाक साधु के समान समझने चाहिए। सूक्ष्म सम्पराय संयत के आकर्ष 10वें गुणस्थान में दो बार उपशम श्रेणि करने वालों की अपेक्षा एक भव में दो बार चढ़ने तथा दो बार उतरने की अपेक्षा चार बार, दूसरे भव में भी दो बार उपशम श्रेणि करने की अपेक्षा चार बार तथा तीसरे भव में क्षपक श्रेणि की अपेक्षा एक बार, इस प्रकार कुल 3 भवों में 9 बार प्राप्त होता है।

यथाख्यात संयतपना 11वें गुणस्थानवर्ती की अपेक्षा एक भव में दो बार उपशम श्रेणि होने से उत्कृष्ट दो बार, दूसरे भव में पुनः दो बार उपशम श्रेणि हो सकने से दो बार, तीसरे भव में क्षपक श्रेणि की अपेक्षा 1 बार, इस प्रकार 3 भवों में कुल 5 बार प्राप्त होता है। विशेष विवरण नियंते के इसी द्वार में देखा जा सकता है।

29. काल द्वार

क्र.सं.	संयत	एक जीव की अपेक्षा
1	सामायिक	जघन्य 1 समय, उत्कृष्ट देशोन करोड़ पूर्व वर्ष
2	छेदोपस्थापनीय	जघन्य 1 समय, उत्कृष्ट देशोन करोड़ पूर्व वर्ष
3	परिहारविशुद्धि	जघन्य 1 समय, उत्कृष्ट 29 वर्ष कम करोड़ पूर्व
4	सूक्ष्म संपराय	जघन्य 1 समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त
5	यथाख्यात	जघन्य 1 समय, उत्कृष्ट देशोन करोड़ पूर्व वर्ष

क्र.सं.	संयत	अनेक जीव की अपेक्षा
1	सामायिक	सदाकाल रहते हैं (शाश्वत)
2	छेदोपस्थापनीय	जघन्य 250 वर्ष, उत्कृष्ट 50 लाख करोड़ सागरोपम।
3	परिहारविशुद्धि	जघन्य देशोन दो सौ वर्ष (142 वर्ष) उत्कृष्ट देशोन (58 वर्ष कम) दो करोड़ पूर्व वर्ष
4	सूक्ष्म संपराय	जघन्य 1 समय, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त
5	यथाख्यात	सदाकाल मिलते हैं (शाश्वत)

ज्ञातव्य - एक जीव की अपेक्षा -

कर्मभूमिज मनुष्य के भव में यदि कोई प्रथम बार सामायिक चारित्र स्वीकार करें तो कम से कम अन्तर्मुहूर्त वह उसी चारित्र पर्याय में रहता ही है। उसके बाद परिणामों की हीनता से वह नीचे के गुणस्थानों में तथा परिणामों की विशुद्धि से ऊपर के गुणस्थानों में जा सकता है। यदि उसी भव में दुबारा-तिबारा सामायिक चारित्र प्राप्त करें और एक समय बाद ही उसका मरण हो जाय उस अपेक्षा से सामायिक संयत का काल जघन्य एक समय होता है। उत्कृष्ट देशोन (9 वर्ष कम) एक पूर्व कोटि वर्ष होता है। यह काल गर्भ में आने के समय से गिनना चाहिए। यदि जन्म दिन से गणना की जाये तो आठ वर्ष कम करोड़ पूर्व होता है। इसी प्रकार छेदोपस्थापनीय चारित्र की स्थिति भी समझ लेनी चाहिए।

परिहारविशुद्धि संयत का एक जीव की अपेक्षा जघन्य काल एक समय मरण की अपेक्षा से समझना चाहिए। उत्कृष्ट देशोन उनतीस वर्ष कम पूर्व कोटि वर्ष प्रमाण होता है, क्योंकि पूर्व कोटि वर्ष की आयु वाले किसी मनुष्य ने 9 वर्ष की उम्र में दीक्षा ग्रहण की और बीस वर्ष की दीक्षा पर्याय होने पर वह परिहारविशुद्धि चारित्र को स्वीकार कर सकता है। यद्यपि परिहारविशुद्धि चारित्र का काल परिमाण अठारह मास का है तथापि उन्हीं निरन्तर रहे परिणामों से वह उसे जीवनपर्यन्त पाले तो देशोन (उनतीस वर्ष कम) पूर्वकोटि वर्ष पर्यन्त रह सकता है।

सूक्ष्म सम्पराय संयत का जघन्य काल एक समय उपशम श्रेणि वाले के मरण की अपेक्षा से है। यदि काल नहीं करे तो अन्तर्मुहूर्त तक उस पर्याय में रहता है। क्षपक श्रेणि की अपेक्षा से तो जघन्य तथा उत्कृष्ट दोनों ही काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होता है।

यथाख्यात संयत का काल परिमाण 11वें गुणस्थानवर्ती उपशम श्रेणि वाले के मरण की अपेक्षा जघन्य एक समय का होता है, अन्यथा अन्तर्मुहूर्त का होता है। उत्कृष्ट काल 13वें गुणस्थान की अपेक्षा देशोन पूर्व कोटि वर्ष का स्नातक के समान समझ लेना चाहिए।

अनेक जीवों की अपेक्षा -

अनेक जीवों की अपेक्षा सामायिक चारित्र और यथाख्यात चारित्र शाश्वत माना जाता है, क्योंकि महाविदेहादि क्षेत्रों में ये दोनों प्रकार के संयत सदाकाल मिलते ही हैं। छेदोपस्थापनीय मात्र भरत-एरवत क्षेत्र में प्रथम व अन्तिम तीर्थकर के शासन काल में मिलता है। परिहारविशुद्धि चारित्र भी छेदोपस्थापनीय वालों में ही मिलता है, किन्तु वह दो पाट तक ही मिलता है, उसके बाद नहीं। उत्सर्पिणी काल में प्रथम तीर्थकर का तीर्थ 250 वर्ष तक चलता है। उस प्रथम तीर्थकर के शासन में छेदोपस्थापनीय चारित्र होता है, इसीलिए इसका जघन्य काल 250 वर्ष का माना है। अवसर्पिणी काल में प्रथम तीर्थकर का शासन 50 लाख करोड़ सागरोपम तक रहता है, इसीलिए छेदोपस्थापनीय संयत की उत्कृष्ट स्थिति 50 लाख करोड़ सागरोपम की होती है।

परिहारविशुद्धि संयतपना जघन्य देशोन दो सौ वर्ष (142 वर्ष) तक रहता है। जैसे कि उत्सर्पिणी काल में प्रथम तीर्थकर के सान्निध्य में 100 वर्ष की आयु वाला मुनि परिहारविशुद्धि चारित्र ग्रहण करे और उनके जीवन के अन्तिम समय में उनके पास भी सौ वर्ष की आयु वाला कोई मुनि परिहारविशुद्धि चारित्र स्वीकार करें। उसके बाद उनके पास फिर कोई उस चारित्र को ग्रहण नहीं कर सकता है। इस तरह दो सौ वर्ष होते हैं। परन्तु परिहारविशुद्धि संयत की प्राप्ति 29 वर्ष की आयु हो जाने पर ही होती है, इसलिए 200 वर्ष में से $29+29=58$ वर्ष कम कर देने से जघन्य काल 142 वर्ष का होता है। यह काल अवसर्पिणी काल के अन्तिम तीर्थकर की अपेक्षा से है।

परिहारविशुद्धि संयत का उत्कृष्ट काल 58 वर्ष कम दो करोड़ पूर्व वर्ष का है। जैसे कि अवसर्पिणी काल के प्रथम तीर्थकर के सान्निध्य में करोड़ पूर्व वर्ष की आयु वाला कोई मुनि परिहारविशुद्धि चारित्र अंगीकार करे और उसके जीवन के अन्तिम समय में एक करोड़ पूर्व वर्ष की आयु वाला कोई मुनि उसके पास यह चारित्र ग्रहण करें। इसके बाद फिर कोई मुनि इस चारित्र को ग्रहण नहीं कर पाता है। ऐसी स्थिति में देशोन 2 करोड़ पूर्व तक यह चारित्र रहता है। क्योंकि दोनों ही अपनी आयु के 29 वर्ष बीतने पर इस चारित्र को ग्रहण करते हैं। प्रत्येक के 29-29 वर्ष कम कर देने से 58 वर्ष कम दो करोड़ पूर्व का परिहारविशुद्धि संयत का उत्कृष्ट काल होता है।

सूक्ष्म सम्पराय चारित्र सदाकाल मिलना आवश्यक नहीं है। यदि मिले तो जघन्य 1 समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक ही मिलता है, क्योंकि दसवें गुणस्थान वालों में ही यह चारित्र मिलता है और दसवें गुणस्थान की स्थिति इतनी ही होती है।

30. अन्तर द्वार

एक जीव की अपेक्षा से - सामायिकादि पाँचों संयतों का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त का, उत्कृष्ट देशोन अर्ध पुद्गल परावर्तन काल का होता है।

अनेक जीव की अपेक्षा से -

1. सामायिक और यथाख्यात संयत का अन्तर नहीं पड़ता, क्योंकि ये महाविदेहादि में शाश्वत होते हैं।
2. छेदोपस्थापनीय संयत का जघन्य अन्तर 63 हजार वर्ष का, उत्कृष्ट 18 कोटाकोटी सागरोपम का।
3. परिहारविशुद्धि संयत का जघन्य अन्तर 84 हजार वर्ष का, उत्कृष्ट 18 कोटाकोटी सागरोपम का।
4. सूक्ष्म सम्पराय संयत का जघन्य अन्तर 1 समय का, उत्कृष्ट 6 माह का।

ज्ञातव्य -

छेदोपस्थापनीय संयत का जो जघन्य अन्तर बतलाया, वह इस प्रकार से समझना चाहिए- अवसर्पिणी काल के पाँचवें आरे तक छेदोपस्थापनीय चारित्र रहता है। उसके बाद छठे आरे में जो इक्कीस हजार वर्ष का होता है और उत्सर्पिणी काल

के इक्कीस-इक्कीस हजार वर्ष के पहले-दूसरे आरे में छेदोपस्थापनीय चारित्र का अभाव होता है। इस प्रकार $21000+21000+21000=63000$ वर्ष का छेदोपस्थापनीय संयतों का जघन्य अन्तर होता है।

उत्कृष्ट अन्तर 18 कोटाकोटी सागरोपम का इस प्रकार से घटित होता है- उत्सर्पिणी काल के 24वें तीर्थंकर के तीर्थ तक छेदोपस्थापनीय चारित्र होता है, उसके बाद दो कोटाकोटी सागरोपम प्रमाण चौथे आरे में, तीन कोटाकोटी सागरोपम प्रमाण पाँचवें आरे में तथा चार कोटाकोटी सागरोपम प्रमाण छठे आरे में तथा इसी प्रकार अवसर्पिणी काल के चार कोटाकोटी सागरोपम प्रमाण पहले आरे में, तीन कोटाकोटी सागरोपम प्रमाण दूसरे आरे में और दो कोटाकोटी सागरोपम प्रमाण तीसरे आरे में छेदोपस्थापनीय चारित्र नहीं होता। उसके बाद अवसर्पिणी काल के तीसरे आरे में पिछले भाग में प्रथम तीर्थंकर के तीर्थ में छेदोपस्थापनीय चारित्र होता है। इस प्रकार से छेदोपस्थापनीय संयतों का उत्कृष्ट अन्तर $(2+3+4, 4+3+2=18)$ 18 कोटाकोटी सागरोपम होता है। इसमें थोड़ा काल कम रहता है और जघन्य अन्तर में थोड़ा काल बढ़ता है, परन्तु वह अल्प होने से यहाँ उसका उल्लेख नहीं किया गया है।

परिहारविशुद्धि संयत का जघन्य अन्तर 84000 वर्षों का बतलाया, उसे इस प्रकार समझना चाहिए- अवसर्पिणी काल का पाँचवा और छठा आरा तथा उत्सर्पिणी काल का पहला और दूसरा आरा, ये सभी इक्कीस-इक्कीस हजार वर्ष के होते हैं, इन चारों में परिहारविशुद्धि चारित्र नहीं होता। यहाँ अन्तिम तीर्थंकर के पश्चात् पाँचवें आरे में परिहारविशुद्धि चारित्र का काल कुछ अधिक और उत्सर्पिणी काल के तीसरे आरे में परिहारविशुद्धि चारित्र को स्वीकार करने से पहले का काल अल्प होने से उसका उल्लेख नहीं किया गया है।

परिहारविशुद्धि चारित्र का उत्कृष्ट अन्तर अठारह कोटाकोटी सागरोपम छेदोपस्थापनीय चारित्र के समान समझना चाहिए। सूक्ष्म सम्पराय संयत का अनेक जीव की अपेक्षा से उत्कृष्ट अन्तर उपशम श्रेणि वालों का पृथक्त्व वर्ष (9 वर्ष) का तथा क्षपक श्रेणि वालों का उत्कृष्ट अन्तर 6 मास का समझना चाहिए। 11वें गुणस्थानवर्ती निर्ग्रन्थों का उत्कृष्ट अन्तर भी अनेक जीवों की अपेक्षा पृथक्त्व वर्ष (9 वर्ष) का समझना चाहिए।

31. समुद्घात द्वार

1. सामायिक, छेदोपस्थापनीय संयत में समुद्घात पावे 6- (केवली समुद्घात को छोड़कर)
2. परिहारविशुद्धि संयत में समुद्घात पावे 3- वेदनीय, कषाय और मारणान्तिक।
3. सूक्ष्म सम्पराय संयत में समुद्घात नहीं।
4. यथाख्यात संयत में समुद्घात पावे एक- केवली समुद्घात।

ज्ञातव्य -

सामायिक, छेदोपस्थापनीय संयत में 6 समुद्घात (केवली समुद्घात को छोड़कर) मानी है। ये समुद्घात छठे गुणस्थान वालों में ही माननी चाहिए। क्योंकि 7 से 9 गुणस्थान वालों में अप्रमत्त होने से समुद्घात नहीं होती है।

परिहारविशुद्धि संयत में-वेदनीय, कषाय, मारणान्तिक ये तीन समुद्घात होती हैं। इनमें भी ये छठे गुणस्थान वालों में ही होती हैं। यद्यपि परिहारविशुद्धि चारित्र वालों में वैक्रिय लब्धि हो सकती है, किन्तु उत्सुकता, कौतुकता, चंचलता आदि न होने से वे वैक्रिय लब्धि का प्रयोग नहीं करते, अतः उनमें वैक्रिय समुद्घात नहीं होती है।

सूक्ष्म सम्पराय संयत में अप्रमत्तता होने से कोई समुद्घात नहीं होती। यथाख्यात संयत में भी 11वें, 12वें तथा 14वें गुणस्थान वालों में कोई भी समुद्घात नहीं होती। 13वें गुणस्थान वालों में किसी-किसी स्नातक में केवली समुद्घात हो सकती है।

32. क्षेत्र द्वार

1. सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धि संयत और सूक्ष्म सम्पराय संयत लोक के असंख्यातवें भाग में होते हैं।
2. यथाख्यात संयत लोक के असंख्यातवें भाग में अथवा लोक के बहुत असंख्यात भागों में अथवा सर्व लोक में होते हैं।

ज्ञातव्य -

यथाख्यात संयत जब तेरहवें गुणस्थान में होते हैं, उस समय यदि वे केवली समुद्घात नहीं करके शरीरस्थ होते हैं, तब वे भी लोक के असंख्यातवें भाग में ही होते हैं। यथाख्यात संयत प्रायः अढ़ाईद्वीप में ही रहते हैं, अढ़ाईद्वीप लोक का असंख्यातवाँ भाग होने से भी उनका क्षेत्र लोक असंख्यातवाँ भाग ही होता है। जब वे केवली समुद्घात करते हैं तब मन्थान अवस्था में लोक के बहुत असंख्यात भागों में तथा लोकपूरित अवस्था (चौथे समय में) में होते हैं तब सर्व लोक में होते हैं। विस्तृत विवेचन नियंठा के इसी द्वार में देख सकते हैं।

33. स्पर्शना द्वार

1. सामायिकादि चार संयत लोक के असंख्यातवें भाग में होते हैं।
2. यथाख्यात संयत लोक के असंख्यातवें भाग में, अथवा लोक के बहुत असंख्यात भागों में अथवा सर्व लोक में होते हैं।

ज्ञातव्य -

क्षेत्र द्वार के समान ही स्पर्शना द्वार बतलाया है। विशेष खुलासा के लिए नियंटा के थोकड़े के इसी द्वार में देखा जा सकता है।

34. भाव द्वार

1. सामायिकादि चार संयतों में एक क्षयोपशम भाव होता है।
2. यथाख्यात संयत में औपशमिक और क्षायिक भाव होता है।

ज्ञातव्य -

सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धि और सूक्ष्म सम्पराय संयत ये चारों छठे से लेकर दसवें गुणस्थान तक में होते हैं। अतः कषाय कुशील साधु के समान इन चारों में एक क्षयोपशम भाव ही माना गया है।

यथाख्यात संयत में जो 11वें गुणस्थानवर्ती हैं, उनमें मात्र उपशम भाव होता है। क्षपक श्रेणि वाले यथाख्यात संयतों में (12वें, 13वें, 14वें गुणस्थानवर्ती) एक क्षायिक भाव ही माना गया है। यहाँ समकित की अपेक्षा कथन नहीं मात्र चारित्र की अपेक्षा ही है अन्यथा तो प्रारंभिक 4 में भी समकित की अपेक्षा उपशम या क्षायिक भाव होता है। विस्तृत खुलासा नियंटे के थोकड़े के भाव द्वार में देखना चाहिए।

35. परिमाण द्वार

प्रतिपद्यमान (वर्तमान में उस अवस्था को प्राप्त करने वाले) की अपेक्षा से - सामायिकादि पाँचों ही संयत कदाचित् होते हैं, कदाचित् नहीं होते हैं, यदि होते हैं तो-

1. सामायिक संयत एक समय में जघन्य 1,2,3, उत्कृष्ट पृथक्त्व हजार होते हैं।
2. छेदोपस्थापनीय संयत एक समय में जघन्य 1,2,3 उत्कृष्ट पृथक्त्व सौ होते हैं।
3. परिहारविशुद्धि संयत एक समय में जघन्य 1,2,3 उत्कृष्ट पृथक्त्व सौ होते हैं।
4. सूक्ष्म सम्पराय और यथाख्यात संयत एक समय में जघन्य 1,2,3 उत्कृष्ट 162 (क्षपक श्रेणि में 108 और उपशम श्रेणि में 54) होते हैं।

पूर्व प्रतिपन्न (पहले से उस अवस्था में रहे हुए) की अपेक्षा से -

1. सामायिक संयत नियमा पृथक्त्व हजार करोड़ होते हैं।
2. छेदोपस्थापनीय संयत कदाचित् होते हैं, कदाचित् नहीं होते हैं। यदि होते हैं तो जघन्य-उत्कृष्ट पृथक्त्व सौ करोड़ होते हैं।
3. परिहारविशुद्धि संयत कदाचित् होते हैं, कदाचित् नहीं होते हैं। यदि होते हैं तो जघन्य-1,2,3 उत्कृष्ट पृथक्त्व हजार होते हैं।
4. सूक्ष्म सम्पराय संयत कदाचित् होते हैं, कदाचित् नहीं होते हैं। यदि होते हैं तो जघन्य 1,2,3 उत्कृष्ट पृथक्त्व सौ होते हैं।
5. यथाख्यात संयत जघन्य-उत्कृष्ट पृथक्त्व करोड़ होते हैं।

ज्ञातव्य -

प्रतिपद्यमान (वर्तमान समय में उस अवस्था को प्राप्त करने वाले) की अपेक्षा सभी संयत कभी होते हैं, कभी नहीं भी होते। यदि होते हैं तो सामायिक संयत 1,2,3 उत्कृष्ट पृथक्त्व हजार (2000 से 9000 के लगभग) हो सकते हैं। छेदोपस्थापनीय संयत जघन्य 1,2,3 उत्कृष्ट पृथक्त्व सौ (200 से 900 के लगभग) हो सकते हैं। परिहारविशुद्धि संयत जघन्य 1,2,3 उत्कृष्ट पृथक्त्व सौ (200 से 300 के लगभग) हो सकते हैं। सूक्ष्म सम्पराय संयत और यथाख्यात संयत जघन्य 1,2,3 उत्कृष्ट 162 (108 क्षपक श्रेणि वाले तथा 54 उपशम श्रेणि वाले हो सकते हैं।)

पूर्व प्रतिपन्न (पहले से ही उस अवस्था में रहे हुए) की अपेक्षा से सामायिक संयत पृथक्त्व हजार करोड़ (2000 से 9000 करोड़ के लगभग) नियमा होते हैं। छेदोपस्थापनीय संयत कभी होते हैं, कभी नहीं होते, यदि होते हैं तो जघन्य-उत्कृष्ट पृथक्त्व सौ करोड़ (900 करोड़ के लगभग) होते हैं।

छेदोपस्थापनीय चारित्र वालों का उत्कृष्ट परिमाण प्रथम तीर्थंकर के तीर्थ आसरी संभावित होता है। परन्तु जघन्य परिमाण बराबर समझ में नहीं बैठता है। क्योंकि पांचवें आरे के अन्त में भरतादि दस क्षेत्रों में प्रत्येक क्षेत्र में दो दो के

हिसाब से बीस छेदोपस्थापनीय चारित्र वाले होते हैं। कोई आचार्य ऐसा कहते हैं कि जघन्य परिमाण भी प्रथम तीर्थंकर के तीर्थ आसरी ही जानना चाहिए। जघन्य प्रत्येक सौ करोड़ में कुछ कम और उत्कृष्ट प्रत्येक सौ करोड़ से कुछ अधिक होते हैं, ऐसा जानना चाहिए।

परिहारविशुद्धि संयत भी कभी होते हैं, कभी नहीं भी होते। यदि होते हैं तो जघन्य 1,2,3 उत्कृष्ट पृथक्त्व हजार (2000 से 3000 के लगभग) होते हैं। सूक्ष्म सम्पराय भी कभी होते हैं, कभी नहीं भी होते। यदि होते हैं तो जघन्य 1,2,3 उत्कृष्ट पृथक्त्व सौ (200 से 900 के लगभग) होते हैं।

यथाख्यात संयत 11वें, 12वें तथा 14वें गुणस्थानवर्ती तो अल्प स्थिति वाले होने से पृथक्त्व सौ ही होते हैं, किन्तु 13वें गुणस्थानवर्ती देशोन करोड़ पूर्व वर्ष की लम्बी स्थिति तक वाले होने से तथा महाविदेहादि क्षेत्रों में सदाकाल शाश्वत रूप से मिलने वाले होने से जघन्य-उत्कृष्ट पृथक्त्व करोड़ (2 करोड़ से 9 करोड़ के लगभग) होते हैं।

36. अल्पबहुत्व द्वार

1. सबसे थोड़े सूक्ष्म सम्पराय संयत (पृथक्त्व सौ होने से)
2. उससे परिहारविशुद्धि संयत संख्यात गुणा (पृथक्त्व हजार होने से)
3. उससे यथाख्यात संयत संख्यात गुणा (पृथक्त्व करोड़ होने से)
4. उससे छेदोपस्थापनीय संयत संख्यात गुणा (पृथक्त्व सौ करोड़ होने से)
5. उससे सामायिक संयत संख्यात गुणा (पृथक्त्व हजार करोड़ होने से)

ज्ञातव्य -

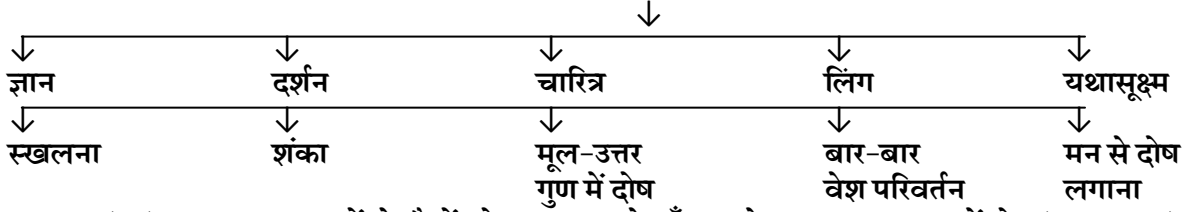
प्रतिपद्यमान और पूर्व प्रतिपन्न इन दोनों प्रकार के संयतों को मिलाने से जो उत्कृष्ट संख्या बनती है, उसके आधार से उपर्युक्त अल्पबहुत्व बतलाई गई है।

सबसे थोड़े सूक्ष्म सम्पराय संयत होते हैं, क्योंकि वे निर्ग्रन्थ नियंठा के तुल्य होने से पृथक्त्व सौ (200 से 900 तक) होते हैं। परिहारविशुद्धि संयत पुलाक लब्धि वालों के समान पृथक्त्व हजार (2000 से 4000 तक लगभग) होने से वे सूक्ष्म सम्पराय से संख्यात गुणा अधिक होते हैं। यथाख्यात संयत पृथक्त्व करोड़ (2 से 9 करोड़ के लगभग) होने से वे परिहारविशुद्धि संयतों से संख्यात गुणा अधिक होते हैं।

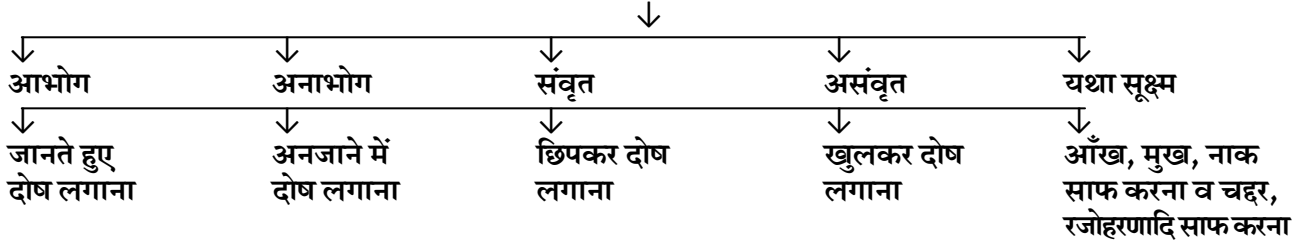
छेदोपस्थापनीय संयत पृथक्त्व सौ करोड़ (200 से 900 करोड़ के लगभग) होने से वे यथाख्यात संयतों से संख्यात गुणा अधिक होते हैं। सामायिक संयत कषाय कुशील की तरह पृथक्त्व हजार करोड़ (8000 करोड़ झाझेरी) होने से वे छेदोपस्थापनीय संयतों से संख्यात गुणा अधिक होते हैं।

नियंठा तथा संजया का सम्मिलित चार्ट

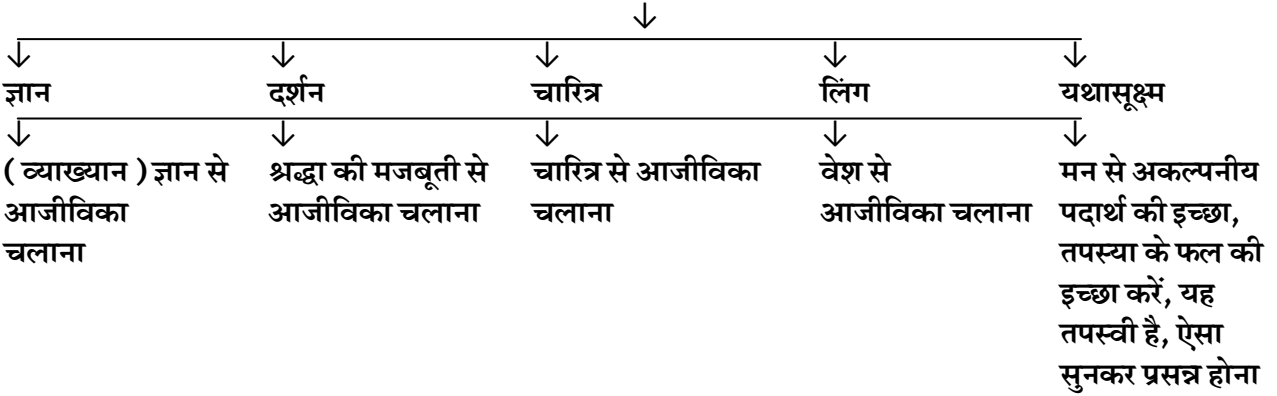
- (1) प्रज्ञापना द्वार- (1) पुलाक-निःसार धान्य के समान चारित्र (6ठा गुणस्थान)
दो भेद- लब्धि पुलाक-चक्रवर्ती आदि की सेना को संघ हित में नष्ट करना ।
आसेवना पुलाक के 5 भेद



- (2) बकुश-चावलों के पौधों को काट कर पुले बाँधकर ढेर करना-उत्तर गुण में दोष (6-7 गुण.)
(अ) शरीर बकुश-शरीर की विभूषा (ब) उपकरण बकुश- उपकरणों की विभूषा करना ।
दोनों के 5-5 भेद

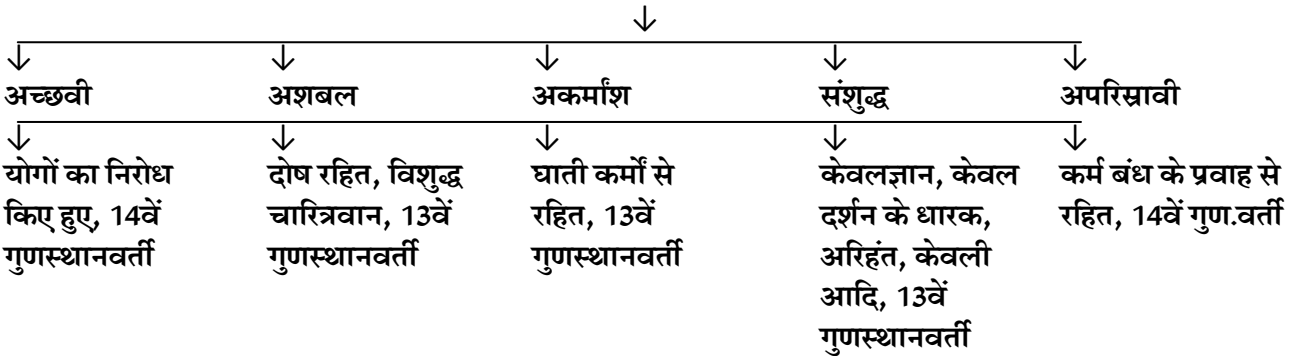
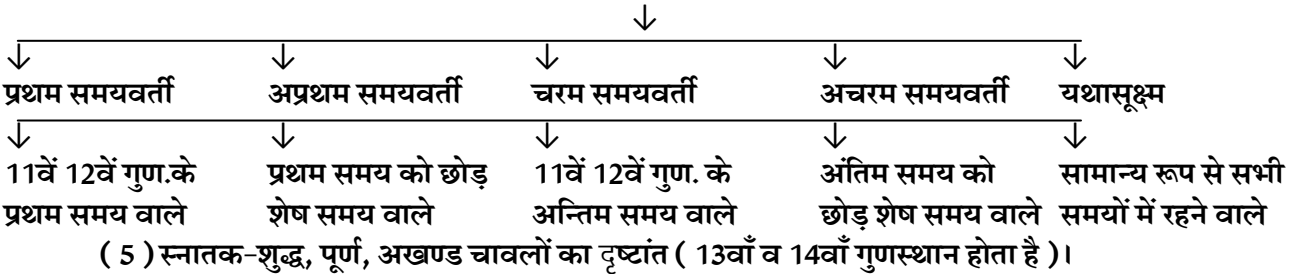


(3) कुशील-उफने हुए चावलों का दृष्टांत (बरसे हुए चावल)-
दो भेद-(i) प्रतिसेवना कुशील, दोष सेवन से चारित्र दूषित करने वाले (6-7 गुण.)



(ii) कषाय कुशील-छिलके सहित चावलों का दृष्टांत, 5 भेद ऊपर की तरह। ज्ञान, दर्शन, चारित्र में दोष नहीं, परंतु संज्वलन कषाय का उदय रहता है केवलज्ञान से पूर्व तीर्थाकर भी इसी चारित्र में रहते हैं। इसमें 6 लेश्या हो सकती है। 6 से 10 तक गुणस्थान होते हैं।

(4) निर्ग्रन्थ-छिलके रहित चावलों का दृष्टांत (इसमें 11वाँ व 12वाँ गुणस्थान होता है)।



द्वार	नियंठा		संजया
(2) वेद द्वार	पु. ब. प्रति. कषाय कु. निर्ग्रन्थ स्नातक	सवेदी 2 पु., पु. नपुं. सवेदी, 3 वेद तीनों सवेदी, 3 वेद, अवेदी-उप. व क्षीण वेदी अवेदी-उप. व क्षीण वेदी अवेदी-क्षीण वेदी	परिहार - सामा. छेदो. सू.सं., यथा. -
(3) राग	पु., ब., प्रति., क.कु. निर्ग्रन्थ स्नातक	सरागी उपशांत व क्षीण वीतरागी क्षीण कषायी वीतरागी	सामा., छेदो., परि., सू.सं यथा. -
(4) कल्प		स्थित + स्थविर अस्थित (2)	
	पु. ब., प्रति. क. कु.	2 + 1 (स्थ.) 2 + 1 (स्थ., जिन) 2 + 3 सामा.	- -

	नि., स्ना.	2	+	1 (कल्पातीत)	सू.सं., यथा.
	-	1 स्थित	+	2 (स्था.,जिन)	छेदो. परि.
(5) चारित्र	पु.,ब.,प्रति.→	सा., छे.,	1-4		←नियंठा सा., छे.
	क.कु.→	(1-4)	क.कु.		← परि., सू. सं.
	नि., स्ना.→	यथा.	नि., स्ना.		← यथा
(6) प्रतिसेवना	पु., प्रति.,	प्रतिसेवी-मूलगुण व उत्तरगुण			-
	बकुश	प्रतिसेवी-उत्तर गुण			-
	क.कुं.,नि.,स्ना.	अप्रतिसेवी			परि., सू.सं., यथा.
	-	प्रतिसेवी-मूलगुण व उत्तरगुण, अप्रतिसेवी			सामा., छेदो.
(7) ज्ञान	पु.,ब. प्रति.,	कितने-2/3			-
	क.कु., नि.	2/3/4			सामा., छे., परि., सू.सं
	स्नातक	1			-
	-	1/2/3/4 = (5)			यथा.
कितना ज्ञान					
		जघन्य		उत्कृष्ट	
	पु.	9वें पूर्व की 3 आचार वस्तु		सम्पूर्ण 9 पूर्व	-
	-	9वें पूर्व की 3 आचार वस्तु		देशोन 10 पूर्व	परि.
	ब., प्रति.,	8 प्रवचन माता		10 पूर्व	-
	क.कु., नि.	8 प्रवचन माता		14 पूर्व	सामा., छेदो., सू.सं.
	-	8 प्रवचन माता		14 पूर्व श्रुतव्यतिरिक्त	यथा.
	स्नातक			श्रुतव्यतिरिक्त	-
(8) तीर्थ	पु., ब., प्रति.,	तीर्थ			छेदो., परि.
	क.कु., नि. स्ना.	तीर्थ, अतीर्थ-स्वयं बुद्ध व प्रत्येक बुद्ध			सामा., सू.सं., यथा
(9) लिंग	-	द्रव्य		भाव	-
		स्वलिंगी		स्वलिंगी	परि.
	6 नियंठा	स्व., अन्य., गृह.,		स्व.	4 चारित्र
(10) शरीर	पु., नि., स्ना.,	3 औ., तै., कर्मण			परि., सू.सं., यथा.
	ब., प्रति.,	4 (3 + वै.)			-
	क.कु.	5 (4 + आहा.)			सामा., छेदो.
(11) क्षेत्र		सद्भाव		संहरण	
	6 नियंठा	15 क.भू.,		ढाई द्वीप	सामा., सू.सं., यथा
		10 क.भू.,		ढाई द्वीप	छेदो.
		10 क.भू.,		-	परिहार
नोट :-ब., प्रति., क.कु., सामा., छेदो., का संहरण हो सकता है, नि. स्ना., सू.सं., यथा. संहरण के समय नहीं होता है।					
(12) कालद्वार	अवसर्पिणी	जन्म	सद्भाव	संहरण	अवसर्पिणी
	पु.	3,4	3,4,5	नहीं	परिहार
	नि.,स्ना.	3,4	3,4,5	4 पलिभाग में	सू.सं., यथा
	ब., प्रति., क.कु.	3,4,5	3,4,5	4 पलिभाग में	सामा., छेदो
	उत्सर्पिणी				उत्सर्पिणी
	6 नियंठा	2,3,4	3,4	4 पलिभाग में	5 चारित्र
				(पु.परि. छोड़ के)	
	नो अव.,नो उत्स.	समान काल में	4 पलिभाग में		सामा., सू.सं., यथा
	(महाविदेह)	(4थे आरे में)			
(13) गति द्वार	(देवता में)	गति	स्थिति	पदवी 5	(देवता में)
		ज. उ.	ज. उ.	आराधक हो तो	

	पु.	1 देव	8 देव	पृ. पल	18 सा.	4 में से 1	परि.
	ब.प्रति.	1 देव	12 देव	पृ. पल	22 सा.	4 में से 1	-
	क.कु.	1 देव	अनु.वि.	पृ. पल	33 सा.	5 में से 1	सामा. छेदो.
	नि.	-	अनु.वि.		33 सा.	1 (अहमिन्द्र)	सू.सं.
	-		अनु.वि.		33 सा.	1 (अहमिन्द्र)	यथा.
			या मोक्ष		या मोक्ष	या मोक्ष	
	स्ना.	मोक्ष	-		-		-
(14) संयम स्थान	नि., स्ना.	1					यथा.
	4 नियंठा	असं.-अंस.					4 चारित्र
		नियंठा-सबसे कम नि., स्ना.-एक→पु.-असं.→ब.					
		असं.→प्रति.-असं.→क.कु.-असं.					
		संजया-सबसे कम यथा.-एक→सू.सं.-असं.→परि.-					
		असं.-सामा., छेदो.→परस्पर तुल्य (असं.)					
(15) निकर्ष	पु.→पु., क.कु.-	6 ठाण वडिया					सामा.-सामा. छेदो. परि
	ब.,प्रति.,नि. स्ना.	अनंतगुण हीन					सू.सं., यथा.
	ब.→ब.,प्रति.,क.कु.	6 ठाण वडिया					छेदो.-सामा.,छेदो., परि
	पु.	अनंत गुण अधिक	अनंतगुण हीन				सू., यथा.
	नि., स्ना.	अनंत गुण हीन	6 ठाण वडिया				परि.-सामा., छेदो., परि
	प्रति.→ब.,प्रति.,	6 ठाण वडिया	अनंत गुण हीन				सू.सं., यथा.
	क.कु.						
	पु.	अनंत गुण अधिक	अनंत गुण अधिक				सू.सं.-सामा.,छेदो.,परि
	नि., स्ना.	अनंत गुण हीन	कदाचित् हीन,तुल्य,अधिक				सू.सं.
	क.कु.→पु.,ब.,प्रति.	6 ठाण वडिया	अनंत गुण हीन				यथा.
	क.कु.						
	नि., स्ना.	अनंत गुण हीन	अनंत गुण अधिक				यथा.-4चारित्र
	नि.→नि., स्ना.	तुल्य	तुल्य				यथा.
	4 नियंठा	अनंत गुण अधिक					
	स्ना.→नि., स्ना.	तुल्य					-
	4 नियंठा	अनंत गुण अधिक					
(16) योग द्वार	1-5 नियंठा	सयोगी					1-4 चारित्र
	स्नातक	सयोगी, अयोगी					यथा.
(17) उपयोग	6 नियंठा	साकार-अनाकार					4 चारित्र
	-	साकार					सू.सं.
(18) कषाय	पु.,ब.,प्रति.,	4 कषाय					परि.
	-	4/3/2					सामा., छेदो.
	क.कु.	4/3/2/1					-
	-	1					सू.सं.
	नि.	उपशांत या क्षीण कषाय					यथा
	स्ना.	क्षीण कषाय					-
(19) लेश्या	पु.,ब., प्रति.	3 (तेजो., पद्म, शुक्ल)					परिहार
	क.कु.	6 लेश्या					सामा., छेदो.
	नि.	शुक्ल लेश्या					सू.सं.

(20) परिणाम	स्नातक	सलेशी (शुक्ल), अलेशी परिणाम	स्थिति	यथा.	
	पु., ब., प्रति., क.कु.	3 हीयमान वर्धमान अवस्थित	जघन्य 1 समय 1 समय	उत्कृष्ट अं.मु. 7 समय	सामा., छेदो., परि
	नि.	2 वर्धमान अवस्थित	अं.मु. 1 समय	अं.मु. अं.मु.	-
	स्ना.	2 वर्धमान अवस्थित	अं.मु. अं.मु.	अं.मु. दे.क्रोड़ पूर्व वर्ष	यथा.
	-	2 वर्धमान हीयमान	1 समय	अं.मु.	सू.सं.
(21) बंध	पु.	7			-
	ब., प्रति.	7/8			सामा., छेदो.
	क.कु.	7/8/6			-
	-	6			सू.सं.
	नि.	1 (वेदनीय)			-
	स्ना.	1 या नहीं			यथा.
(22) वेदन (उदय)	पु., ब., प्रति., क.कु.	8			4 चारित्र
	नि.	7			-
	-	7/4			यथा.
	स्ना.	4			-
(23) उदीरणा	पु.	6 (आयु, वेदनीय को छोड़)			-
	ब., प्रति.	7/8/6			सामा., छेदो., परि.
	क.कु.	7/8/6/5			-
	-	6/5			सू.सं.
	नि.	5/2			-
	-	5/2 तथा नहीं			यथा
	स्ना.	2 तथा नहीं			-
(24) उवसंपद्दान (मार्गणा)	पु.	पु. को छोड़-क.कु., असंयम में जावे			-
	ब.	ब.-प्रति., क.कु., असंयम, संयमासंयम में जावे			-
	प्रति.	प्रति.-ब., क.कु., असंयम, संयमासंयम में जावे			-
	क.कु.	क.कु.-पु., ब., प्रति., नि., संयमा., असंयम			-
	नि.	नि.-क.कु., स्ना., असंयम में जावे			-
	स्ना.	स्ना.-मोक्ष में जावे			-
	-	सामा.-छेदो., सू.सं., असंयम, संयमासंयम			सामा.
	-	छेदो.-सामा., परि., सू.सं., असं., संयमासंयम			छेदो.
	-	परि.-छेदो., असंयम			परि.
	-	सू.सं.-यथा., छेदो., सामा., असंयम			सू.सं.
	-	यथा.-मोक्ष, सू.सं., असंयम (काल करे तो)			यथा.
(25) संज्ञा	पु., नि., स्ना.	नो सन्ना बहुता			सू.सं., यथा.
	ब., प्रति., क.कु.,	4 संज्ञा/नो सन्ना बहुता			सामा., छेदो., परि
(26) आहारक	5 नियंठा	आहारक			4 चारित्र
	स्ना.	2 आहारक/अनाहारक			यथा.
(27) भव (वह पर्याय कितने भव में आ सकती है)	पु., नि. ब., प्रति., क.कु., स्नातक	जघन्य 1 जघन्य 1 1 भव (उसी भव में मोक्ष)	जघन्य 1 जघन्य 1 1 भव (उसी भव में मोक्ष)	उत्कृष्ट 3 उत्कृष्ट 8	परि., सू.सं., यथा सामा., छेदो. -

(28) आकर्ष	एक भव आश्री		अनेक भव आश्री		
	जघन्य	उत्कृष्ट	जघन्य	उत्कृष्ट	
पु.	1	3	2	7	परि.
ब., प्रति., क.कु.	1	पृ. 100	2	पृ. 1000	सामा.
-	1	120	2	960	छेदो.
नि.	1	2	2	5	यथा.
-	1	4	2	9	सू.सं.
स्नातक	मोक्ष		-	-	-
(29) काल द्वार (स्थिति)	एक जीव आश्री		अनेक जीव आश्री		
	जघन्य	उत्कृष्ट	जघन्य	उत्कृष्ट	
पु.	अं.मु.	अं.मु.	1 समय	अं.मु.	-
ब., प्रति., क.कु.	1 समय	9 वर्ष कम करोड़ पूर्व	शाश्वत		सामा., यथा
-	1 समय	9 वर्ष कम करोड़ पूर्व	250 वर्ष	50 लाख करोड़ सागर	छेदो.
-	1 समय	29 वर्ष कम करोड़ पूर्व	142 वर्ष	58 वर्ष कम करोड़ पूर्व	परि.
नि.	1 समय	अं.मु.	1 समय	अं.मु.	सू.सं.
स्ना.	अं.मु.	9 वर्ष कम करोड़ पूर्व	शाश्वत		-
(30) अंतर द्वार	पु.	अं.मु. दे. अर्ध पु. परा.	1 समय	संख्यात वर्ष	-
	ब., प्रति., क.कु.	अं.मु. दे. अर्ध पु. परा.	नहीं		सामा., यथा.
नि.	अं. मु. दे. अर्ध पु. परा.	1 समय	6 माह	सू.सं.,	
-	अं. मु. दे. अर्ध पु. परा.	63 ह.वर्ष	दे. 18 को.को.सा.	छेदो.	
-	अं. मु. दे. अर्ध पु. परा.	84 ह.वर्ष	दे. 18 को.को.सा.	परि.	
स्ना.	नहीं	नहीं			-
(31) समुद्घात	पु.	3 (वेद, क., मारणांतिक)			परि.
	ब. प्रति.	5 (3 + वै., तै.)			-
क.कु.	6 (5 + आहारक)				सामा., छेदो.
नि.	नहीं				सू.सं.
स्ना.	1 केवली				यथा.
(32) अवगाहना	5 नियंठा	लोक के असंख्यातवें भाग में			4 चारित्र
	स्ना.	लोक के असं. भाग-अनेक असं भागों-समग्र लोक (शरीर, दण्ड, कपाट) (मथान)			यथा.
(33) स्पर्शना	6 नियंठा	अवगाहना से कुछ ज्यादा			5 चारित्र
(34) भाव (3)	4 नियंठा	1 क्षायो.			4 चारित्र
	नि.	2 (उपशम या क्षायिक)			यथा.
स्ना.	1 क्षायिक				-
(35) परिमाण		वर्तमान आश्री	भूतकाल आश्री		
		जघन्य	उत्कृष्ट	जघन्य	उत्कृष्ट
पु.	कदा. होते.	कदा. नहीं	कदा. होते.	कदा. नहीं	परि.
	1,2,3	पृ. 100	1,2,3	पृ. 1000	
ब., प्रति.	कदा. होते.	कदा. नहीं	ज.पू. 100	उ.पू. 100	छेदो.
	1,2,3	पृ. 100	करोड़	करोड़	
क.कु.	कदा. होते.	कदा. नहीं	नियमा पृथक्त्व	1000 करोड़	सामा
	1,2,3	पृ. 1000			

नि.	कदा. होते. 1,2,3	कदा. नहीं 162 (54+108) (उप.+क्षपक)	कदा. होते. 1,2,3	कदा. नहीं पृ. 100	सू.सं.
स्ना.	कदा. होते. 1,2,3	कदा. नहीं 108	नियमा पृ. करोड़		-
-	कदा. होते. 1,2,3	कदा. नहीं 162	नियमा पृ. करोड़		यथा.
(36) अल्पबहुत्व नियंठा		सबसे कम-निर्गन्थ (पृ. 100)-पु.सं. गुणा (पृ. 1000)			-
		स्ना. (पृ. करोड़) सं. गुणा-ब. सं. गुणा (पृ. 100 करोड़)			-
		प्रति.सं.गुणा (पृ.100 करोड़)-क.कु.सं.गुणा (पृ. 1000 करोड़)			-
-		सबसे कम सू.सं. (पृ. 100)-परि.सं.गुणा (पृ. 1000)			5 चारित्र
-		यथा.सं.गुणा (पृ. करोड़)-छेदो. सं. गुणा. (पृ. 100 करोड़)			
-		सामा. सं. गुणा. (पृ. 1000 करोड़)			

सेवम् भन्ते ! सेवम् भन्ते !

800 बोल की बन्धी

पन्नवणा सूत्र के 24,25,26 व 27वें पद में अधिकार चले सो कहते हैं-

1. कर्म बांधते हुए बांधे
2. कर्म बांधते हुए वेदे
3. कर्म वेदते हुए बांधे
4. कर्म वेदते हुए वेदे

ज्ञातव्य-

- A. शाश्वत गुणस्थान- 1,4,5,6,7 तथा 13वाँ
- B. बंध के गुणस्थान- ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, नाम, गोत्र, अन्तराय, ये 10वें गुणस्थान तक निरन्तर बंधते हैं। आयु कर्म तीसरे गुणस्थान को छोड़कर 1 से 7 गुणस्थान तक पूरे जीवन में एक बार बंधता है। मोहनीय कर्म 9वें गुणस्थान तक व वेदनीय कर्म 13वें गुणस्थान तक निरन्तर बंधता है, 14वाँ गुणस्थान अबन्धक है।
- C. वेदन (उदय) के गुणस्थान- ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, अन्तराय को 12वें गुणस्थान तक वेदते हैं। वेदनीय, आयु, नाम व गोत्र को 14वें गुणस्थान तक वेदते हैं। मोहनीय कर्म को 10वें गुणस्थान तक वेदते हैं।
- D. बंध के स्थान- पहले से सातवें गुणस्थान तक (तीसरे को छोड़कर) 8 कर्म अथवा 7 कर्म बांधते हैं। 3,8,9वें गुणस्थान में 7 कर्म बान्धते हैं। दसवें गुणस्थान में 6 कर्म बांधते हैं। 11,12,13वें गुणस्थान में 1 कर्म बांधते हैं। 14वाँ अबन्धक गुणस्थान है।
- E. वेदन के स्थान- 1 से 10 गुणस्थान तक 8 कर्मों का वेदन (उदय) है। 11,12वें में 7 कर्मों का वेदन है। 13,14वें में 4 अघाती कर्मों का वेदन है।
- F. एक कर्म बंध या वेदन का स्थान अशाश्वत होने पर तीन भंग बनते हैं। दो कर्म बंध या वेदन का स्थान अशाश्वत होने पर 9 भंग व तीन कर्म बंध या वेदन का स्थान अशाश्वत होने पर 27 भंग बनते हैं। सभी कर्मों का बंध या वेदन शाश्वत होने पर भंग नहीं बन्धते हैं।
- G. एकेन्द्रिय में निरन्तर 7-8 कर्म बांधने वाले होते ही हैं इसलिए उन्हें शाश्वत माना है क्योंकि पाँच स्थावरों में एक ना एक जीव तो निरन्तर आयु बांधता ही है।

भंगों का विवरण -

असंयोगी- जिसमें अशाश्वत का संयोग ही न हो।

द्विसंयोगी- जिसमें अशाश्वत का एक-एक करके संयोग हो। अशाश्वत 1=2 भंग, अशाश्वत 2=4 भंग, अशाश्वत 3=6 भंग।

त्रिसंयोगी-जिसमें अशाश्वत का युगल रूप में संयोग हो। अशाश्वत 2=4 भंग, अशाश्वत 3=12 भंग। चार भंग निम्न प्रकार से बनेंगे। अशाश्वत तीन होने पर अलग-अलग तीन युगल बन जायेंगे और इसी प्रकार एक-एक युगल के चार-चार भंग बन जायेंगे। 3=बहुत, 1=एक

(311)(313)(331)(333)

चतुःसंयोगी-तीन अशाश्वत होने पर तीनों अशाश्वत का संयोग होता है। अशाश्वत 3=8 भंग।

आठ भंग को निम्न प्रकार से समझ सकते हैं। 3=बहुत, 1=एक।

(3111)(3113)(3131)(3133)(3311)(3313)(3331)(3333)

800 बोल की बन्धी क्यों कहा ?

समुच्चय जीव व 24 दण्डक ये 25 बोल हुए। आठ कर्म के 25x8=200 बोल हुए। कर्म बांधते हुए बांधने के 200 बोल, कर्म बांधते हुए वेदने के 200 बोल, कर्म वेदते हुए बांधने के 200 बोल व कर्म वेदते हुए वेदने के 200 बोल, कुल 800 बोल होते हैं, इसी कारण से इस थोकड़े को 800 बोल की बन्धी कहा जाता है।

(1) कर्म बांधते हुए बांधे

(1) ज्ञानावरणीय कर्म बांधता हुआ कितनी कर्म प्रकृतियाँ बांधता है ?

समुच्चय जीव 7,8 अथवा 6 कर्म बांधता है। 7,8 वाले शाश्वत (हमेशा मिलने वाले) 6 वाले अशाश्वत (कभी मिलने वाले, कभी नहीं मिलने वाले)

भाग 3= (1) सभी 7,8 कर्म बांधने वाले (2) 7,8 बांधने वाले बहुत, 6 बांधने वाला एक (3) 7,8 बांधने वाला बहुत, 6 बांधने वाले भी बहुत।

मनुष्य भी 7,8 अथवा 6 कर्म बांधता है। 7 वाले शाश्वत तथा 8,6 वाले अशाश्वत।

इनके नौ भंग होते हैं- असंयोगी एक, दो संयोगी चार और तीन संयोगी चार।

1. सभी सात कर्म बांधने वाले, 2. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक, 3. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, 4. सात कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक, 5. सात कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत, 6. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक, छह कर्म बांधने वाला एक, 7. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक, छह कर्म बांधने वाले बहुत, 8. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक, 9. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत।

5 स्थावर के दण्डक 7 अथवा 8 कर्म बांधते हैं। 7,8 दोनों ही कर्म बांधने वाले शाश्वत हैं, अतः भंग नहीं बनेंगे।

शेष 18 दण्डक 7 अथवा 8 कर्म बांधते हैं, 7 वाले शाश्वत, 8 वाले अशाश्वत।

भंग 3= (1) सभी 7 बांधने वाले (2) सभी सात बांधने वाले, 8 बांधने वाला एक (3) सभी 7 बांधने वाले, 8 बांधने वाले बहुत।

18 दण्डक के 3-3 भंग $18 \times 3 = 54$

ज्ञानावरणीय कर्म के भंग $3 + 9 + 54 = 66$

(2-5) इसी प्रकार दर्शनावरणीय, नाम, गोत्र, अन्तराय के भंग हैं- $4 \times 66 = 264$

(6) वेदनीय कर्म बांधता हुआ कितने कर्म बांधता है ?

समुच्चय जीव 7,8,6 अथवा 1 कर्म बांधता है। 7,8,1 वाले शाश्वत, 6 वाले अशाश्वत। भागे 3= (1) सभी 7,8,1 कर्म बांधने वाले (2) 7,8,1 बांधने वाले बहुत, 6 बांधने वाला एक (3) 7,8,1 बांधने वाले बहुत, 6 बांधने वाले बहुत।

मनुष्य भी 7,8,6 अथवा 1 कर्म बांधता है। 7,1 बांधने वाले शाश्वत 8, 6 बांधने वाले अशाश्वत।

भंग 9 = 1. सभी सात और एक कर्म बांधने वाले, 2. सात और एक कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक, 3. सात और एक कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, 4. सात और एक कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक, 5. सात और एक कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत, 6. सात और एक कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक, छह कर्म बांधने वाला एक, 7. सात और एक कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक, छह कर्म बांधने वाले बहुत, 8. सात और एक कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक, 9. सात और एक कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत।

5 स्थावर के दण्डक 7 या 8 कर्म बांधते हैं। 7,8 दोनों ही शाश्वत, अतः भंग नहीं बनेंगे।

शेष 18 दण्डक 7 या 8 कर्म बांधते हैं, 7 बांधने वाले शाश्वत, 8 बांधने वाले अशाश्वत। भागे 3= (1) सभी 7 बांधने वाले (2) 7 बांधने वाले बहुत, 8 बांधने वाला एक (3) 7 बांधने वाले बहुत, 8 बांधने वाले बहुत।

18 दण्डक के 3-3 भंग $18 \times 3 = 54$

वेदनीय कर्म के भागे $3 + 9 + 54 = 66$

(7) मोहनीय कर्म बांधता हुआ कितनी कर्म प्रकृतियाँ बांधता है ?

समुच्चय जीव 7 या 8 कर्म बांधता है, 7,8 दोनों ही शाश्वत हैं, भंग नहीं बनेंगे।

5 स्थावर के दण्डक 7 अथवा 8 कर्म बांधते हैं, 7,8 दोनों ही शाश्वत हैं, भंग नहीं बनेंगे।

शेष 19 दण्डक 7 या 8 कर्म बांधते हैं, 7 वाले शाश्वत, 8 वाले अशाश्वत।

भंग 3= (1) सभी 7 बांधने वाले (2) 7 बांधने वाले बहुत, 8 बांधने वाला एक (3) 7 बांधने वाले बहुत, 8 बांधने वाले बहुत।

19 दण्डक के 3-3 भंग $19 \times 3 = 57$

(8) आयु कर्म बांधता हुआ कितने कर्म बांधता है ?

समुच्चय जीव तथा बहुत जीव आयु कर्म बांधते हुए 8 कर्म बांधते हैं इसी तरह 24 दण्डक आश्री 8 कर्म बांधते हैं। शाश्वत होने से भंग नहीं बनेंगे।

कर्म बांधते हुए बांधे के भंग $66+264+66+57=453$

(2) कर्म बांधते हुए वेदे

(1) ज्ञानावरणीय कर्म बांधता हुआ कितने कर्म वेदता है ?

समुच्चय जीव व 24 दण्डक आठों ही कर्म वेदता है इसलिए भंग नहीं बनेंगे।

(2-7) दर्शनावरणीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अन्तराय कर्म बांधता हुआ कितने कर्म वेदे ?

8 कर्मों का वेदन सभी 25 द्वारों में। इसलिए भंग नहीं बनेंगे।

(8) वेदनीय कर्म बांधता हुआ कितने कर्म वेदता है ?

समुच्चय जीव 8,7,4 कर्म वेदता है। 8,4 को वेदने वाले शाश्वत हैं, 7 वाले अशाश्वत।

भाग 3 = (1) सभी 8 व 4 कर्म वेदने वाले (2) 8 व 4 कर्म वेदने वाले बहुत, 7 कर्म वेदने वाला एक (3) 8 व 4 कर्म वेदने वाले बहुत, 7 कर्म वेदने वाले बहुत।

मनुष्य- उपर्युक्तानुसार 3 भंग।

नरकादि 23 दण्डक वाले 8 कर्म वेदते हैं। इनके भंग नहीं बनेंगे।

कर्म बांधते हुए वेदने के भंग $3+3=6$

(3) कर्म वेदते हुए बांधे

(1) ज्ञानावरणीय कर्म को वेदता हुआ कितने कर्म बांधता है ?

समुच्चय जीव 7,8,6 व 1 कर्म बांधता है। 7,8 वाले शाश्वत, 6,1 वाले अशाश्वत हैं।

नौ भंग होते हैं- 1. सभी सात, आठ कर्म बांधने वाले, 2. सात, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक, 3. सात, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत, 4. सात, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, एक कर्म बांधने वाला एक, 5. सात, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, एक कर्म बांधने वाले बहुत, 6. सात, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक, एक कर्म बांधने वाला एक, 7. सात, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक, एक कर्म बांधने वाले बहुत, 8. सात, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत, एक कर्म बांधने वाला एक, 9. सात, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत, एक कर्म बांधने वाले बहुत।

मनुष्य 7,8,6,1 कर्म बांधता है। 7 बांधने वाले शाश्वत 8,6,1 वाले अशाश्वत। सत्ताईस भंग होते हैं-असंयोगी एक, दो संयोगी छह, तीन संयोगी बारह और चार संयोगी आठ। 1. सभी सात कर्म बांधने वाले, 2. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक, 3. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, 4. सात कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक, 5. सात कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत, 6. सात कर्म बांधने वाले बहुत, एक कर्म बांधने वाला एक, 7. सात कर्म बांधने वाले बहुत, एक कर्म बांधने वाले बहुत। (तीन संयोगी 311, 313, 331, 333), 8. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक, छह कर्म बांधने वाला एक, 9. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक, छह कर्म बांधने वाले बहुत। 10. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक, 11. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत, 12. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक, एक कर्म बांधने वाला एक, 13. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक, एक कर्म बांधने वाले बहुत, 14. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, एक कर्म बांधने वाले बहुत, एक कर्म बांधने वाला एक, 15. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, एक कर्म बांधने वाले बहुत, 16. सात कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक, एक कर्म बांधने वाला एक, 17. सात कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक, एक कर्म बांधने वाले बहुत, 18. सात कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत, एक कर्म बांधने वाले बहुत, एक कर्म बांधने वाला एक, 19. सात कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत, एक कर्म बांधने वाले बहुत। (चार संयोगी 3111, 3113, 3131, 3133, 3311, 3313, 3331, 3333), 20. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक, छह कर्म बांधने वाला एक, एक कर्म बांधने वाला एक, 21. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक, छह कर्म बांधने वाला एक, एक कर्म बांधने वाले बहुत, 22. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक, छह कर्म बांधने वाले बहुत, एक कर्म बांधने वाला एक, 23. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाला एक, छह कर्म बांधने वाले बहुत, एक कर्म बांधने वाले बहुत, 24. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक, एक कर्म बांधने वाला एक, 25. सात कर्म

बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाल एक, एक कर्म बांधने वाले बहुत, 26. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत, एक कर्म बांधने वाला एक, 27. सात कर्म बांधने वाले बहुत, आठ कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत, एक कर्म बांधने वाले बहुत ।

5 स्थावर के दण्डक 7, 8 कर्म बांधते हैं, 7,8 दोनों ही शाश्वत हैं। भंग नहीं बनेंगे।

शेष 18 दण्डक के जीव 7, 8 कर्म बांधते हैं, 7 वाले शाश्वत, 8 वाले अशाश्वत हैं।

भंग 3= (1) सभी 7 बांधने वाले (2) 7 बांधने वाले बहुत, 8 बांधने वाला एक (3) 7 बांधने वाले बहुत, 8 बांधने वाले बहुत ।

18 दण्डक के 3-3 भंग $18 \times 3 = 54$

ज्ञानावरणीय कर्म के भंग $9 + 27 + 54 = 90$

(2-3) इसी प्रकार दर्शनावरणीय और अन्तराय के भंग हैं। $2 \times 90 = 180$

(4) वेदनीय कर्म वेदता हुआ कितने कर्म बांधता है ?

समुच्चय जीव 7,8,6 व 1 कर्म बांधता है या अबंधक होता है। 7,8,1 वाले शाश्वत, 6 व अबंधक वाले अशाश्वत हैं।

नो भंग होते हैं- असंयोगी एक, दो संयोगी चार, तीन संयोगी चार। 1. सभी सात, आठ और एक कर्म बांधने वाले, 2. सात, आठ व एक कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक, 3. सात, आठ व एक कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत, 4. सात, आठ व एक कर्म बांधने वाले बहुत, अबन्धक एक, 5. सात, आठ व एक कर्म बांधने वाले बहुत, अबन्धक बहुत, 6. सात, आठ व एक कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक, अबन्धक एक, 7. सात, आठ व एक कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाला एक, अबन्धक बहुत, 8. सात, आठ व एक कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत, अबन्धक एक, 9. सात, आठ व एक कर्म बांधने वाले बहुत, छह कर्म बांधने वाले बहुत, अबन्धक बहुत ।

5 स्थावर के दण्डक 7 या 8 बांधते हैं। दोनों शाश्वत हैं। भंग नहीं बनेंगे।

मनुष्य 7,8,6,1 या अबंधक होते हैं।

7 व 1 वाले शाश्वत 8,6 व अबंधक अशाश्वत हैं।

भंग 27= असंयोगी का एक, दो संयोगी के 6, तीन संयोगी के 12 और 4 संयोगी के 8, ज्ञानावरणीय के समान 27 भंग (कहना चाहिए)।

शेष 18 दण्डक 7 या 8 कर्म बांधे। 7 वाले शाश्वत, 8 वाले अशाश्वत हैं।

भंग 3= (1) सभी 7 बांधने वाले (2) 7 बांधने वाले बहुत, 8 बांधने वाला एक (3) 7 बांधने वाले बहुत, 8 बांधने वाले बहुत ।

18 दण्डक के 3-3 भंग $18 \times 3 = 54$

वेदनीय कर्म के भंग $9 + 27 + 54 = 90$

(5-7) इसी प्रकार आयु, नाम व गोत्र के भंग हैं। $3 \times 90 = 270$

(8) मोहनीय कर्म वेदता हुआ कितने कर्म बांधता है ?

समुच्चय जीव 7,8 या 6 कर्म बांधता है। 7,8 वाले शाश्वत, 6 वाले अशाश्वत हैं।

भांगे 3= (1) सभी 7,8 बांधने वाले (2) 7,8 बांधने वाले बहुत, 6 बांधने वाला एक (3) 7,8 बांधने वाले बहुत, 6 बांधने वाले बहुत ।

मनुष्य 7,8,6 कर्म बांधते हैं। 7 वाले शाश्वत, 8 व 6 बांधने वाले अशाश्वत हैं।

भांगे 9 = 1. सभी सात बांधने वाले, 2. सात बांधने वाले बहुत, बांधने आठ वाला एक, 3. सात बांधने वाले बहुत, आठ बांधने वाले बहुत, 4. सात बांधने वाले बहुत, छह बांधने वाला एक, 5. सात बांधने वाले बहुत, छह बांधने वाले बहुत, 6. सात बांधने वाले बहुत, आठ बांधने वाला एक, छह बांधने वाला एक, 7. सात बांधने वाले बहुत, आठ वाले एक, छह बांधने वाले बहुत, 8. सात बांधने वाले बहुत, आठ बांधने वाले बहुत, छह बांधने वाले एक, 9. सात बांधने वाले बहुत, आठ बांधने वाले बहुत, छह बांधने वाले भी बहुत ।

5 स्थावर के दण्डक 7 या 8 कर्मों को बांधते हैं। दोनों ही शाश्वत हैं। भंग नहीं बनेंगे।

शेष 18 दण्डक 7 या 8 कर्म बांधते हैं। 7 वाले शाश्वत, 8 वाले अशाश्वत हैं।

भंग 3= (1) सभी 7 बांधने वाले (2) 7 बांधने वाले बहुत, 8 बांधने वाला एक (3) 7 बांधने वाले बहुत, 8 बांधने वाले बहुत ।

18 दण्डक के 3-3 भंग $18 \times 3 = 54$

मोहनीय कर्म के भंग $3+9+54=66$

कर्म वेदते हुए बांधने के भंग $90+180+90+270+66=696$

(4) कर्म वेदते हुए वेदे

(1) ज्ञानावरणीय कर्म वेदते हुए कितने कर्म वेदता है ?

समुच्चय जीव 7 या 8 कर्म वेदता है। 8 वाले शाश्वत, 7 वाले अशाश्वत हैं।

भंग 3= (1) सभी 8 वेदने वाले, (2) 8 वेदने वाले बहुत, 7 वेदने वाला एक, (3) 8 वेदने वाले बहुत, 7 वेदने वाले बहुत।

मनुष्य दण्डक 7 या 8 कर्म वेदता है। 8 वेदने वाले शाश्वत 7 वेदने वाले अशाश्वत हैं।

भंग 3= (1) सभी 8 वेदने वाले, (2) 8 वेदने वाले बहुत, 7 वेदने वाला एक, (3) 8 वेदने वाले बहुत, 7 वेदने वाले बहुत।

शेष 23 दण्डक 8 कर्म वेदते हैं। भंग नहीं बनेंगे।

ज्ञानावरणीय कर्म के भंग $3+3=6$

(2-3) इसी प्रकार दर्शनावरणीय व अन्तराय कर्म के भंग - $2 \times 6=12$

(4) वेदनीय कर्म वेदता हुआ कितने कर्म वेदता है ?

समुच्चय जीव 8,7 व 4 कर्म वेदते हैं। 8 व 4 कर्म वेदने वाले शाश्वत, 7 कर्म वेदने वाले अशाश्वत हैं।

भंग 3= (1) सभी 8,4 वेदने वाले (2) 8,4, वेदने वाले बहुत, 7 वेदने वाला एक (3) 8,4 वेदने वाले बहुत, 7 वेदने वाले बहुत।

मनुष्य 8,7 या 4 कर्म वेदते हैं। 8,4 वेदने वाले शाश्वत, 7 वेदने वाले अशाश्वत। उपर्युक्तानुसार 3 भंग बनेंगे।

शेष 23 दण्डक 8 कर्म वेदते हैं। भंग नहीं बनेंगे।

वेदनीय के भंग $3+3=6$

(5-7) इसी प्रकार आयु, नाम, गोत्र कर्म के भंग - $3 \times 6=18$

(8) मोहनीय कर्म वेदता कितने कर्म वेदता है ?

सभी 25 द्वार 8 कर्म वेदते हैं। भंग नहीं बनेंगे।

कर्म वेदते हुए वेदे के भंग $6+12+6+18=42$

इस प्रकार कुल भंग-

कर्म बांधते हुए बांधे के भंग	-	453
कर्म बांधते हुए वेदे के भंग	-	006
कर्म वेदते हुए बांधे के भंग	-	696
कर्म वेदते हुए वेदे के भंग	-	042
योग	-	<u>1197</u>

॥ सेवम् भते, सेवम् भते, सेवम् भते ॥

पदवी का शोकड़ा

(पन्नवणा सूत्र 20वाँ पद)

पन्नवणा सूत्र के बीसवें पद में पदवी का शोकड़ा¹ चलता है, जिसके सात द्वार हैं-1. नाम द्वार, 2. उत्पत्ति द्वार, 3. अवगाहना द्वार, 4. कार्य द्वार, 5. आगति द्वार, 6. गति द्वार, 7. पावण (प्राप्ति) द्वार।

1. नाम द्वार- सात एकेन्द्रिय रत्न- चक्र रत्न, छत्र रत्न, दण्ड रत्न, खड्ग रत्न, चर्म रत्न, मणि रत्न, काकिणी रत्न। सात पंचेन्द्रिय रत्न- सेनापति, गाथापति, बड़ई, पुरोहित, हाथी, घोड़ा, श्रीदेवी।*
नौ मोटी पदवी- 1. तीर्थकर, 2. चक्रवर्ती, 3. बलदेव, 4. वासुदेव, 5. केवली, 6. साधु, 7. श्रावक, 8. सम्यग्दृष्टि, 6. मांडलिक राजा। कुल पदवी 7+7+9=23.

2. उत्पत्ति द्वार-

रत्न	उत्पत्ति स्थान
हाथी, घोड़ा	वैताद्वय पर्वत के मूल में उत्पन्न होते हैं।
सेनापति, गाथापति, बड़ई, पुरोहित	चक्रवर्ती की राजधानी में उत्पन्न होते हैं।
श्रीदेवी	विद्याधरों की उत्तर की श्रेणी में उत्पन्न होती है।
चक्ररत्न, छत्ररत्न, दण्डरत्न, खड्गरत्न	चक्रवर्ती की आयुधशाला में उत्पन्न होते हैं।
चर्मरत्न, मणिरत्न, काकिणीरत्न	चक्रवर्ती के भण्डार में उत्पन्न होते हैं।
तीर्थकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव	अढ़ाईद्वीप में 15 कर्मभूमि में आर्यक्षेत्र में ही उत्पन्न होते हैं
केवली, साधु, मांडलिक राजा	आर्य-अनार्य दोनों क्षेत्रों में उत्पन्न होते हैं
श्रावक व सम्यग्दृष्टि	अढ़ाईद्वीप के अन्दर तथा बाहर भी उत्पन्न होते हैं। (तिर्यच पंचेन्द्रिय की अपेक्षा)

3. अवगाहना द्वार-

रत्नों के नाम	अवगाहना
चक्ररत्न, छत्ररत्न	चार हाथ लम्बा, चार हाथ चौड़ा
दण्ड रत्न	चार हाथ लम्बा
खड्ग रत्न	पचास अंगुल लम्बा, सोलह अंगुल चौड़ा, चार अंगुल की मूठ, आधा अंगुल की धार
चर्म रत्न	दो हाथ लम्बा ²

¹ इस शोकड़े में कुछ विवेचन अन्य आगमों से भी लिया गया है।

*अपनी जाति की सर्वोत्तम वस्तु को रत्न कहते हैं। सातों एकेन्द्रिय रत्न पृथ्वीकाय रूप होते हैं। चौदह ही रत्न 1000-1000 देवों से अधिष्ठित रहते हैं।

² चर्म रत्न के लिए आगम में तो श्रीवत्स के सरीखा रूप बताया है, जिससे चौकोर होने की अधिक संभावना लगती है। बृहत्संग्रहणी सूत्र में चर्म रत्न की लम्बाई दो हाथ की बताई है। चौड़ाई जाड़ाई का वर्णन नहीं मिलने से नहीं दी है। चर्म

मणि रत्न	चार अंगुल लम्बा, दो अंगुल चौड़ा
काकिणी रत्न	चार अंगुल लम्बा, चार अंगुल चौड़ा, चार अंगुल ऊँचा, काकिणी रत्न के छह तले, आठ कोण, बारह अंश होते हैं, वजन में आठ सोनैया भार, इसका आकार स्वर्णकार के ऐरण जैसा होता है।
सेनापति, गाथापति, बढई, पुरोहित	चक्रवर्ती के बराबर
हाथी	चक्रवर्ती से दुगुनी
घोड़ा	एक सौ आठ अंगुल ³ लम्बा, अस्सी अंगुल ऊँचा, (चार अंगुल के खुर, सोलह अंगुल की पिण्डी, चार अंगुल का गोड़ा (घुटना), बीस अंगुल की जांघ, बत्तीस अंगुल का मुंह और चार अंगुल के कान) होते हैं।
श्रीदेवी	चक्रवर्ती महाराज से चार अंगुल छोटी
तीर्थंकर	जघन्य 7 हाथ उत्कृष्ट 500 धनुष
चक्रवर्ती	जघन्य 7 धनुष उत्कृष्ट 500 धनुष
बलदेव, वासुदेव	जघन्य 10 धनुष उत्कृष्ट 500 धनुष (बलदेव-वासुदेव की उत्कृष्ट अवगाहना 500 धनुष की महाविदेह क्षेत्र की अपेक्षा से समझना चाहिए अन्यथा भरत-ऐरवत क्षेत्र की अपेक्षा तो उत्कृष्ट अवगाहना 80 धनुष की ही होती है।)
केवली व साधु	जघन्य 2 हाथ उत्कृष्ट 500 धनुष
श्रावक व सम्यग्दृष्टि	जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग उत्कृष्ट 1000 योजन
मांडलिक राजा	जघन्य 2 हाथ उत्कृष्ट 500 धनुष

4. कार्य द्वार-

रत्नों के नाम	कार्य
चक्ररत्न	सेना के आगे-आगे आकाश में 'गरणाट' शब्द करता हुआ चलता है और छह खण्ड साधने का रास्ता बतलाता है। चक्रवर्ती की इच्छानुसार जहां चक्ररत्न ठहरता है, वहीं सेना का पड़ाव होता है।
छत्ररत्न	सेना के उपर 12 योजन लम्बे, 9 योजन चौड़े छत्र के रूप में परिणत हो जाता है और शीत, ताप तथा वायु आदि से रक्षा करता है।
दण्ड रत्न	विषम स्थान को सम करके सड़क जैसा रास्ता बना देता है और वैताह्य पर्वत की दोनों गुफाओं (खण्ड प्रपात गुफा और तमिस्र गुफा) के द्वार खोलता है।
खड्ग रत्न	यह 50 अंगुल लम्बा, 16 अंगुल चौड़ा और आधा अंगुल मोटा होता है, अत्यन्त तीक्ष्ण धार वाला होता है। हजारों कोसों की दूरी पर स्थित शत्रु का सिर काट डालता है।
मणि रत्न	चार अंगुल लम्बा और दो अंगुल चौड़ा होता है। इसे उँचे स्थान पर रख देने से दो योजन तक चन्द्रमा के समान प्रकाश करता है। अगर हाथी के मस्तक पर रख दिया जाय तो सवार को किसी प्रकार का भय नहीं होता।

रत्न की स्थापना दी है, जिससे उसका आकार चौकोर होना ही अधिक संगत लगता है। श्लोकों में चार हाथ लम्बा, दो हाथ चौड़ा किस आधार से बताया है यह स्पष्ट नहीं हो पाया है।

³ अंगुल का प्रमाण तत्कालीन चक्रवर्ती के आत्म-अंगुल के प्रमाण अनुसार समझना।

काकिणी रत्न	छहों ओर से चार-चार अंगुल लम्बा-चौड़ा होता है। इससे वैताढ्य पर्वत की गुफाओं में एक-एक योजन के अन्तर पर 500 धनुष के गोलाकार 49 मंडल किये जाते हैं। उसका चन्द्रमा के समान प्रकाश जब तक चक्रवर्ती जीवित रहते हैं तब तक बना रहता है।
चर्म रत्न	यह दो हाथ लम्बा होता है, यह 12 योजन लम्बी और 9 योजन चौड़ी नौका रूप हो जाता है। चक्रवर्ती की सेना इस पर सवार होकर गंगा और सिंधु जैसी महानदियों को पार करती है।
सेनापति	बीच के दोनों खण्डों को चक्रवर्ती स्वयं जीतता है और चारों कोनों के चारों खण्डों को चक्रवर्ती का सेनापति जीतता है। यह वैताढ्य पर्वत की गुफाओं के द्वार दंड का प्रहार करके खोलता है और म्लेच्छों को पराजित करता है।
गाथापति	चर्मरत्न को पृथ्वी के आकार का बनाकर उन पर 24 प्रकार का धान्य और सब प्रकार के मेवा-मसाले, शाक-भाजी आदि दिन के पहले पहर में लगाते हैं, दूसरे पहर में सब पक जाते हैं और तीसरे पहर में उन्हें तैयार कर के चक्रवर्ती आदि को खिला देता है।
बढ़ई रत्न	मुहूर्त भर में 12 योजन लम्बा, 9 योजन चौड़ा और 42 खंड का महल, पौषधशाला, रथशाला, घुड़साल, पाकशाला, बाजार आदि सब सामग्री से युक्त नगर बना देता है। रास्ते में चक्रवर्ती अपने समस्त परिवार के साथ उसमें निवास करते हैं।
पुरोहित रत्न	शुभ मुहूर्त बतलाता है। लक्षण, हस्तरेखा आदि (सामुद्रिक) व्यंजन, (तिल, मसा आदि) स्वप्न, अंग का फड़कना-इत्यादि सबका शुभ-अशुभ फल बतलाता है। शान्तिपाठ करता है, जाप करता है।
अश्व रत्न	(कमलापति घोड़ा) पूंछ से मुख तक 108 अंगुल लम्बा खुर से कान तक 80 अंगुल ऊंचा क्षण भर में अभीष्ट स्थान पर पहुंचा देने वाला और विजय दिलाने वाला होता है।
गजरत्न	यह चक्रवर्ती से दुगुना ऊंचा होता है। महा सौभाग्यशाली, कार्यदक्ष और अत्यन्त सुन्दर होता है।
स्त्रीरत्न	(श्रीदेवी) वैताढ्यपर्वत की उत्तर श्रेणी के स्वामी विद्याधर की पुत्री होती है। अत्यन्त सुरुपवती और सदैव कुमारिका के समान युवती रहती है। इसका देहमान चक्रवर्ती के देहमान से चार अंगुल कम होता है। यह पुत्र प्रसव नहीं करती है।

5. आगति द्वार-

स्थान	आगति
पहली नारकी से निकल कर	सोलह पदवी पावे (सात एकेन्द्रिय रत्न छोड़ कर)
दूसरी नारकी से निकला हुआ	पन्द्रह पदवी पावे (सोलह में से चक्रवर्ती को छोड़ कर)
तीसरी नारकी से निकला हुआ	तेरह पदवी पावे (पन्द्रह में से बलदेव, वासुदेव को छोड़ कर)
चौथी नारकी से निकला हुआ	बारह पदवी पावे (तेरह में से तीर्थकर की पदवी छोड़ कर)
पांचवीं नारकी से निकला हुआ	ग्यारह पदवी पावे (बारह में से केवली को छोड़ कर)
छठी नारकी से निकला हुआ	दस पदवी पावे (ग्यारह में से साधु को छोड़ कर)
सातवीं नारकी से निकला हुआ	तीन पदवी पावे- हाथी, घोड़ा, सम्यग्दृष्टि।
भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी से निकले हुए	इक्कीस पदवी पावे (तीर्थकर, वासुदेव की पदवी छोड़ कर)
पहला, दूसरा देवलोक से निकला हुआ	तेवीस पदवी पावे।
तीसरे देवलोक से आठवें देवलोक तक से निकला हुआ	सोलह पदवी पावे। (सात एकेन्द्रिय को छोड़ कर)

नवमें देवलोक से नवग्रैवेयक तक से निकला हुआ	चौदह पदवी पावे (सोलह में से हाथी, घोड़े को छोड़ कर)
पांच अनुत्तर विमान से निकले हुए	आठ पदवी पावे (नव मोटी पदवी में से वासुदेव को छोड़ कर)
पृथ्वी, पानी, वनस्पति, सत्री तिर्यच तथा सत्री मनुष्य से निकले हुए	उन्नीस पदवी पावे (तीर्थकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव को छोड़ कर)
तीन विकलेन्द्रिय, असत्री तिर्यच पंचेन्द्रिय तथा असत्री मनुष्य से निकले हुए	अठारह पदवी पावे (उन्नीस में से केवली पदवी को छोड़ कर)
तेउकाय, वायुकाय से निकले हुए	नौ पदवी पावे- हाथी, घोड़ा और सात एकेन्द्रिय रत्न ।

6. गति द्वार-

स्थान	गति
पहली नरक से चौथी नरक तक	ग्यारह पदवियों वाले जावे (सात पंचेन्द्रिय रत्न, ⁴ चक्रवर्ती, वासुदेव, मांडलिक राजा, सम्यग्दृष्टि)।
पांचवीं, छठी नारकी में	नौ पदवी वाला जावे (हाथी, घोड़ा छोड़ कर)।
सातवीं नरक में	सात पदवी वाला जावे (श्रीदेवी और सम्यग्दृष्टि को छोड़ कर)।
भवनपति से लगाकर बारहवें देवलोक तक	चार पदवियों वाला जावे (साधु, श्रावक, सम्यग्दृष्टि, माण्डलिक राजा)।
नवग्रैवेयक और पांच अनुत्तर विमान में	दो पदवी वाला जावे (साधु, सम्यग्दृष्टि)।
पांच स्थावर, असत्री मनुष्य में	आठ पदवी वाले जावे (सात एकेन्द्रिय और माण्डलिक राजा)।
तीन विकलेन्द्रिय, असत्री तिर्यच पंचेन्द्रिय, सत्री तिर्यच पंचेन्द्रिय तथा सत्री मनुष्य में	नौ पदवी वाले जाते हैं (सात एकेन्द्रिय रत्न, मांडलिक राजा और सम्यग्दृष्टि)।

7. पावण द्वार-

स्थान	पदवी
नरक, देवता में	एक पदवी पावे-सम्यग्दृष्टि की।
तिर्यच में	ग्यारह पदवी पावे-सात एकेन्द्रिय रत्न, हाथी, घोड़ा, श्रावक, सम्यग्दृष्टि की।
मनुष्य में	चौदह पदवी पावे- नौ तो मोटी पदवी, पांच पंचेन्द्रिय रत्न (हाथी, घोड़ा छोड़ कर)।

⁴ प्रज्ञापना टब्बाकार ने अनुत्तर विमान से आये हुए नहीं होने के कारण पांचों (मनुष्य) पंचेन्द्रिय रत्नों को नरक में जाना ही बताया है इसलिए हाथी, घोड़े भी पंचेन्द्रिय रत्न होने से उनका भी नरक में जाना ही समझा जाता है। अतः देवलोक में जाने में इनका वर्जन किया है।

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड, जोधपुर

कक्षा : नवमीं - जैनागम स्तोक वारिधि (परीक्षा 07 जनवरी, 2018)

समय : 3 घण्टे

अंक : 100

प्र.1 निम्नलिखित प्रश्नों में से सही उत्तर का क्रमाक्षर कोष्ठक में लिखिए :-

10x1=(10)

- (a) वायुकाय के देशबंध की जघन्य स्थिति है-
(क) 1 समय (ख) 1 अन्तर्मुहूर्त
(ग) एक क्षुल्लक भव में 3 समय कम (घ) एक मुहूर्त (क)
- (b) वैक्रिय के समुच्चय जीव के सर्वबंध की उत्कृष्ट स्थिति है-
(क) 1 समय (ख) 2 समय
(ग) 33 सागरोपम में 1 समय कम (घ) अन्तर्मुहूर्त (ख)
- (c) जो काय गुप्ति से रहित होता है, वह है-
(क) पुलाक (ख) बकुश
(ग) प्रतिसेवना कुशील (घ) कषाय कुशील (ख)
- (d) बकुश साधु होते हैं-
(क) तीर्थ में (ख) अतीर्थ में
(ग) तीर्थ-अतीर्थ में (घ) दोनों में नहीं (क)
- (e) परिहार विशुद्ध चारित्र में शरीर पाये जाते हैं-
(क) 2 (ख) 3
(ग) 4 (घ) 5 (ख)
- (f) परिहार विशुद्धि संयत होते हैं-
(क) मूलगुण प्रतिसेवी (ख) उत्तरगुण प्रतिसेवी
(ग) अप्रतिसेवी (घ) इनमें से कोई नहीं (ग)
- (g) शाश्वत गुणस्थान नहीं है-
(क) पहला (ख) दूसरा
(ग) चौथा (घ) पाँचवाँ (ख)
- (h) देवता में पदवी पायी जाती है-
(क) एक (ख) दो
(ग) तीन (घ) चार (क)
- (i) वैताढ्य पर्वत के मूल में उत्पन्न होता है-
(क) मणिरत्न (ख) श्रीदेवी
(ग) घोड़ा (घ) काकिणी रत्न (ग)
- (j) कर्म वेदते हुए वेदे के भंग हैं-
(क) 453 (ख) 6
(ग) 42 (घ) 696 (ग)

प्र.2 निम्न प्रश्नों के उत्तर 'हाँ' अथवा 'नहीं' में दीजिए :- 10x1=(10)

- (a) एक मुहूर्त में होने वाले अधिकतम क्षुल्लक भवों की संख्या 65526 है। (नहीं)
- (b) आहारक शरीर 1 भव में दो बार व सम्पूर्ण संसार काल में 4 बार से अधिक नहीं होता है। (हाँ)
- (c) प्रतिसेवना कुशील काल करके उत्कृष्ट आठवें देवलोक में जाता है। (नहीं)
- (d) निर्ग्रन्थ और स्नातक में संयम स्थान असंख्यात होते हैं। (नहीं)
- (e) सूक्ष्म संपराय संयत में साकार उपयोग ही होता है। (हाँ)
- (f) यथाख्यात संयत में हीयमान परिणाम नहीं होता है। (हाँ)
- (g) पाँच स्थावर में निरन्तर आयु बंधक होते हैं। (हाँ)
- (h) एक कर्म के बंधक गुणस्थान 10,11,12,13 हैं। (नहीं)
- (i) मांडलिक राजा की अवगाहना जघन्य 2 हाथ होती है। (हाँ)
- (j) 6 खण्डों के बीच के दोनों खण्डों को चक्रवती का सेनापति जीतता है। (नहीं)

प्र.3 निम्नलिखित में क्रम से जोड़ी मिलाकर उत्तर रिक्तस्थान में लिखिए:- 10x1=(10)

- | | | |
|-----------------------------|--------------------------|----------------------|
| (a) अशबल | (क) 7000 वर्ष | दोषरहित |
| (b) अप्काय | (ख) निर्विश्यमान | 7000 वर्ष |
| (c) परिहार विशुद्धि चारित्र | (ग) चार हाथ लम्बा | निर्विश्यमान |
| (d) वनस्पतिकाय | (घ) दोष रहित | 10 हजार वर्ष |
| (e) पलिभाग | (च) चार अंगुल लम्बा | समान काल |
| (f) कालास्यवेषीय पुत्र | (छ) समान काल | गांगेय अणगार |
| (g) दण्ड रत्न | (ज) गांगेय अणगार | चार हाथ लम्बा |
| (h) चर्म रत्न | (झ) 10 हजार वर्ष | दो हाथ लम्बा |
| (i) घोड़ा रत्न | (य) दो हाथ लम्बा | एक सौ आठ अंगुल लम्बा |
| (j) मणिरत्न | (र) एक सौ आठ अंगुल लम्बा | चार अंगुल लम्बा |

प्र.4 मुझे पहचानो :-

10x2=(20)

- (a) मैं जघन्य नवें पूर्व की तीसरी आचार वस्तु का अध्ययन करता हूँ। पुलाक/ परिहार विशुद्धिसंयत
- (b) असंख्यात लोकों में जितने आकाश प्रदेश होते हैं, उतने मेरे स्थान होते हैं। संयम स्थान
- (c) मैं वीर्यान्तराय कर्म से उत्पन्न शक्ति हूँ। वीर्यता
- (d) मैं सबसे छोटा 256 आवलिका का भव हूँ। क्षुल्लक भव
- (e) हम द्रव्य तथा भाव दोनों की अपेक्षा स्वलिंग में ही होते हैं। परिहार विशुद्धि संयत
- (f) मैं स्वजातीय-परजातीय चारित्र की पर्यायों के साथ संयोजन करने पर होता हूँ। सन्निकर्ष
- (g) मैं अबन्धक गुणस्थान हूँ। 14वाँ/अयोगी केवली
- (h) मेरा वेदन 10वें गुणस्थान तक ही होता है। मोहनीय
- (i) मैं विद्याधरों की उत्तर की श्रेणी में उत्पन्न होने वाला रत्न हूँ। श्री देवी
- (j) मैं ऐसा रत्न हूँ कि मेरी अवगाहना चक्रवती से दुगुनी होती है। हाथी

प्र.5 एक या दो वाक्यों में उत्तर दीजिए-

9x2=(18)

- (a) देव में वैक्रिय शरीर के देश बंध की स्थिति लिखिए।
देव के वैक्रिय शरीर के देशबंध की स्थिति जघन्य 10000 वर्ष में 3 समय कम, उत्कृष्ट 33 सागर में एक समय कम।
- (b) तिर्यच पंचेन्द्रिय में वैक्रिय शरीर के देशबंध का अन्तर लिखिए।
स्वकाय आसरी- जघन्य- अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कृष्ट- प्रत्येक करोड़ पूर्व
परकाय आसरी- जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कृष्ट- अनन्त काल (वनस्पतिकाल)
- (c) निर्ग्रन्थ किसे कहते हैं ?
जो बाह्य और आभ्यन्तर ग्रन्थ (परिग्रह) मिथ्यात्व मोह और प्रारम्भिक तीन कषाय के चौक-मोहनीय की 13 सर्वघाति प्रकृति और इनकी सीमा में आने वाले 9 कषायों की ग्रन्थि से रहित से रहित होते हैं, वे निर्ग्रन्थ कहलाते हैं।
- (d) पुलाक साधु में उपसम्पद्धान द्वारा लिखिए।
पुलाक, पुलाकपने को छोड़ता हुआ दो स्थानों में जाता है- 1. कषाय कुशील और 2. असंयम।

- (e) बकुश साधु आहारक लब्धि का प्रयोग क्यों नहीं कर सकते हैं ?
क्योंकि इनमें उत्कृष्ट दस पूर्वों तक का ही ज्ञान होता है। जबकि आहारक लब्धि के लिए चौदह पूर्वों का ज्ञान अनिवार्य होता है।
- (f) निर्ग्रन्थों में अनेक भवों की अपेक्षा आकर्ष लिखिए।
एक भव में- जघन्य 1 बार, उत्कृष्ट 2 बार
अनेक भवों में- जघन्य 2 बार, उत्कृष्ट 5 बार।
- (g) एक जीव की अपेक्षा पुलाक साधु का काल अन्तर्मुहूर्त क्यों बताया है ?
पुलाकपने को प्राप्त करने वाला साधु, जब तक पुलाक लब्धि का प्रयोग पूर्ण नहीं होता, अन्तर्मुहूर्त काल पूरा नहीं होता तब तक वह पुलाकपने से गिरता नहीं है, मरण को तो पुलाक वैसे ही प्राप्त नहीं होता, इसलिए एक जीव की अपेक्षा पुलाक की जघन्य-उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त की होती है।
- (h) छेदोपस्थापनीय संयत में परिणाम लिखिए और उनकी स्थिति लिखिए।
छेदोपस्थापनीय संयत में परिणाम पावे तीन- हीयमान, वर्द्धमान, अवस्थित।
हीयमान, वर्द्धमान की स्थिति जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त।
अवस्थित की स्थिति जघन्य एक समय, उत्कृष्ट सात समय।
- (i) 'यथाख्यात संयत' यथाख्यात चारित्र को छोड़कर सीधा कहाँ-कहाँ जाता है ?
'यथाख्यात संयत' यथाख्यात चारित्र को छोड़कर सीधा 3 स्थानों में जाता है- 1. सूक्ष्म सम्पराय 2. असंयत 3. सिद्ध (मोक्ष में)

प्र.5 निम्न प्रश्नों के उत्तर तीन-चार वाक्यों में लिखिए :- (कोई 8)

8x4=(32)

- (a) वेदनीय कर्म बांधता हुआ समुच्चय जीव कितने कर्म वेदता है ? भंग भी लिखिए।
समुच्चय जीव 8,7,4 कर्म वेदता है। 8,4 को वेदने वाले शाश्वत हैं, 7 वाले अशाश्वत।
भांगे 3=(1) सभी 8 व 4 कर्म वेदने वाले (2) 8 व 4 कर्म वेदने वाले बहुत, 7 कर्म वेदने वाला एक (3) 8 व 4 कर्म वेदने वाले बहुत, 7 कर्म वेदने वाले बहुत।
- (b) पाँचों शरीरों के देशबंध, सर्वबंध और अबंध की शामिल अल्प बहुत्व लिखिए।
1. सबसे थोड़े आहारक शरीर के सर्वबन्धक, 2. उससे आहारक शरीर के देशबन्धक संख्यात गुणा,

3. उससे वैक्रिय शरीर के सर्व बन्धक असंख्यात गुणा, 4. उससे वैक्रिय शरीर के देशबंधक असंख्यात गुणा, 5. उससे तैजसकार्मण शरीर के अबंधक अनंत गुणा, किन्तु परस्पर में तुल्य होते हैं। 6. उससे औदारिक शरीर के सर्वबंधक अनंत गुणा, 7. उससे औदारिक शरीर के अबंधक विशेषाधिक, 8. उससे औदारिक शरीर के देशबंधक असंख्यात गुणा, 9. उससे तैजस् कार्मण शरीर के देशबंधक विशेषाधिक, 10. उससे वैक्रिय शरीर अबंधक विशेषाधिक, 11. उससे आहारक शरीर के अबंधक विशेषाधिक।

(c) औदारिक शरीर के समुच्चय जीव के सर्वबंध का अन्तर काल लिखिए।

औदारिक शरीर के समुच्चय जीव के सर्वबंध का जघन्य अन्तर तीन समय कम क्षुल्लक भव ग्रहण पर्यन्त का है तथा उत्कृष्ट अन्तर समयाधिक पूर्वकोटि और तैतीस सागरोपम का होता है।

(d) पुलाक को अन्य लिंग, गृहस्थ लिंग में किस अपेक्षा से समझना चाहिए ?

पुलाक लब्धि वाला साधु जिसे एक देश से दूसरे देश में जाना आवश्यक हो, बीच में ऐसा राज्य आता हो, जिसमें जैन साधुओं के प्रवेश पर पाबन्दी हो, वहाँ अन्यलिंग अथवा गृहस्थलिंग धारण करके उस राज्य में प्रवेश कर लें। वहाँ किसी के पहचान जाने पर कोई आपत्ति खड़ी कर दे, बहुत बड़ा संकट उपस्थित करदे, अन्य कोई समाधान नहीं निकले तो विवश होकर जिनशासन की एवं संघ की सुरक्षा के लिए वह साधु उसी अन्यलिंग अथवा गृहस्थलिंग में रहते हुए ही पुलाक लब्धि का प्रयोग कर ले, इस अपेक्षा से अन्यलिंग, गृहस्थलिंग पुलाक में माना जाता है।

(e) पाँचों संयतों में चारित्र-पर्याय की अल्पबहुत्व लिखिए।

1. सबसे थोड़े सामायिक संयत और छेदोपस्थापनीय संयत के जघन्य चारित्र पर्याय-परस्पर में तुल्य।

2. उससे परिहारविशुद्धि के जघन्य चारित्र-पर्याय अनन्तगुणा।

3. उससे परिहारविशुद्धि के उत्कृष्ट चारित्र-पर्याय अनन्तगुणा।

4. उससे सामायिक, छेदोपस्थापनीय के उत्कृष्ट चारित्र-पर्याय परस्पर तुल्य किन्तु परिहारविशुद्धि से अनन्त गुणा।

5. उससे सूक्ष्म सम्पराय के जघन्य चारित्र-पर्याय अनन्तगुणा।

6. उससे सूक्ष्म सम्पराय के उत्कृष्ट चारित्र पर्याय अनन्तगुणा।

7. उससे यथाख्यात के अजघन्य-अनुत्कृष्ट चारित्र-पर्याय अनन्तगुणा।

(f) परिहार विशुद्धि संयत का जघन्य अन्तर स्पष्ट कीजिए।

परिहारविशुद्धि संयत का जघन्य अन्तर 84000 वर्षों का बतलाया, उसे इस प्रकार समझना चाहिए-अवसर्पिणी काल का पाँचवा और छठा आरा तथा उत्सर्पिणी काल का पहला और दूसरा आरा, ये सभी इक्कीस-इक्कीस हजार वर्ष के होते हैं, इन चारों में परिहारविशुद्धि चारित्र नहीं होता। यहाँ अन्तिम तीर्थंकर के पश्चात् पाँचवें आरे में परिहारविशुद्धि चारित्र का काल कुछ अधिक और उत्सर्पिणी काल के तीसरे आरे में परिहारविशुद्धि चारित्र को स्वीकार करने से पहले का काल अल्प होने से उसका उल्लेख नहीं किया गया है।

(g) पुलाक लब्धि वाला पुलाकपने में काल नहीं करता तो फिर उसकी गति किस अपेक्षा से बतलाई है ?

पुलाकपने को छोड़कर जब कषाय कुशीलादि में आ जाते हैं, उस समय उनके पास पुलाक लब्धि तो रहती है, प्रयोग नहीं होता। मूलभाव एवं पूर्व पर्याय की अपेक्षा से उसकी गति एवं स्थिति दोनों मानी जाती है। जिसने पुलाक लब्धि का प्रयोग करने के बाद उसकी आलोचना आदि करके शुद्धि कर ली है, वह आराधक बन जाता है और कषाय कुशीलपन को प्राप्त कर यदि अन्तर्मुहूर्त में ही काल कर जाये तो उसका मरण, पुलाक का मरण माना जाता है, इसी अपेक्षा से उसकी गति और स्थिति बतलाई है।

(h) पाँच संयतों में पूर्व प्रतिपन्न की अपेक्षा परिमाण लिखिए।

1. सामायिक संयत नियमा पृथक्त्व हजार करोड़ होते हैं।

2. छेदोपस्थापनीय संयत कदाचित् होते हैं, कदाचित् नहीं होते हैं। यदि होते हैं तो जघन्य-उत्कृष्ट पृथक्त्व सौ करोड़ होते हैं।

3. परिहारविशुद्धि संयत कदाचित् होते हैं, कदाचित् नहीं होते हैं। यदि होते हैं तो जघन्य-1,2,3 उत्कृष्ट पृथक्त्व हजार होते हैं।

4. सूक्ष्म सम्पराय संयत कदाचित् होते हैं, कदाचित् नहीं होते हैं। यदि होते हैं तो जघन्य 1,2,3 उत्कृष्ट पृथक्त्व सौ होते हैं।

5. यथाख्यात संयत जघन्य-उत्कृष्ट पृथक्त्व करोड़ होते हैं।

(i) परिहार विशुद्धि संयत का उत्कृष्ट काल 58 वर्ष कम दो करोड़ पूर्व वर्ष किस अपेक्षा से है ?

परिहारविशुद्धि संयत का उत्कृष्ट काल 58 वर्ष कम दो करोड़ पूर्व का है। जैसे कि अवसर्पिणी काल के प्रथम तीर्थंकर के सान्निध्य में करोड़ पूर्व वर्ष की आयु वाला कोई मुनि परिहारविशुद्धि चारित्र अंगीकार करे और उसके जीवन के अन्तिम समय में एक करोड़ पूर्व वर्ष की आयु वाला कोई मुनि उसके पास यह चारित्र ग्रहण करें। इसके बाद फिर कोई मुनि इस चारित्र को ग्रहण नहीं कर पाता है। ऐसी स्थिति में देशोन् 2 करोड़ पूर्व तक यह चारित्र रहता है। क्योंकि दोनों ही अपनी आयु के 29 वर्ष बीतने पर इस चारित्र को ग्रहण करते हैं। प्रत्येक के 29-29 वर्ष कम कर देने से 58 वर्ष कम दो करोड़ पूर्व का परिहारविशुद्धि संयत का उत्कृष्ट काल होता है।

